ISSN 2582-0133

साइकिल

बच्चों का दुमहिया

वर्ष 8 अंक 2 जून - जुलाई 2025



मूल्य ₹150

साइकिल

बच्चों का दुमाहिया

वर्ष 8 अंक 2 जून - जुलाई 2025

सम्पादन सुशील शुक्ल, शशि सबलोक
सहायक सम्पादक तज़ीन अली
डिज़ाइन तापोशी घोषाल
कवर तापोशी घोषाल
वितरण अनीता शर्मा, सुनील भाटी

साल	कुल मूल्य (रजिस्टर्ड डाक खर्च सहित)
1	1100 रुपए
2	2000 रुपए
3	3000 रुपए

एक प्रति 150 रुपए
(डाक खर्च अतिरिक्त)

भुगतान विवरण - बैंक ड्राफ्ट/चेक
इकतारा ट्रस्ट Ektara Trust के नाम नई दिल्ली में देय
ऑनलाइन ट्रांसफर - एच.डी.एफ.सी. बैंक,
बी-78 डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली
खाता नम्बर - 50100688089124, IFSC HDFC0000134 में भेजें।
ऑनलाइन खरीद की लिंक
https://www.ektarashop.in
भुगतान और वितरण की पूरी जानकारी
publication@ektaraindia.in पर दें।

इस QR कोड को मोबाइल से स्कैन कर सभी UPI से भुगतान किया जा सकता है। भुगतान के बाद सम्पर्क, पता, ऑर्डर और भुगतान की तमाम जानकारियाँ साझा करें।

इकतारा **तक्षशिला का बाल साहित्य एवं कला केन्द्र**
2, मालवीय नगर, भोपाल 462003
फोन 0755-4939472, 9109915118, 9630097118
ई-मेल cycle@ektaraindia.in
वेबसाइट www.ektaraindia.in

पासवर्ड

मयंक टंडन

चित्रः तापोशी घोषाल



मकड़ी के जाले का पासवर्ड कॉम्प्लेक्स था। बारह कैरेक्टर- कम से कम एक कैपिटल अक्षर, एक छोटा अक्षर और एक स्पेशल कैरेक्टर। मच्छर घर से याद करता हुआ, बल्कि गुनगुनाता हुआ आया। BhiNnBhinN#5 जब वो पहुँचा, वो भूल गया कि कौन-से भिन्न का कौन-सा एन कैपिटल है। उसने तीन बार ट्राई किया। तीनों बार गलत। उसने फॉर्गोट पासवर्ड किया। लेकिन साइट सरकारी थी। ओटीपी आया ही नहीं। मकड़ी आ गई।



कचकलूनिया बाबू-



सो जा ग

हिमांशु व्यास
चित्रः ऋषि साहनी

कचकलूनिया बाबू को लगा वे नींद में चलते हैं। तो उन्हें एक उपाय सूझा जिस से पता चल जाए कि वे नींद में चलते हैं भी या नहीं। उपाय बहुत सरल था कि खुद पर नज़र रखी जाए। उन्होंने तय किया कि आज रात एक आँख से ही सोता हूँ। दूसरी आँख खुली रखूँगा। नींद में चलूँगा तो दिख जाएगा।

देर रात कचकलूनिया बाबू की खुली आँख ने देखा कि वे नींद में चल पड़े हैं। तभी उन्हें शक हुआ कि जो आँख नींद ले रही है वो सपना तो नहीं देख रही है कि वे नींद में चल रहे हैं? कचकलूनिया बाबू को एक गज़ब का आइडिया आया। क्यों न जो आँख खुली है उस से सो जाऊँ और जो सो रही है उसे खोल दूँ!

कचकलूनिया बाबू ने सोई आँख खोल दी और खुली आँख बन्द करके सो गए।

देर रात उन्हें फिर दिखा कि वे नींद में चल रहे हैं। फैक्ट चैक करने के लिए कचकलूनिया बाबू ने पहली आँख को सुला दिया और सोई आँख वापस खोल दी।

इसी में सुबह हो गई।

चावल गाथा

पुष्पेश पन्त

चित्रः रुचि शाह



कहते हैं कि दुनिया की आधी से ज़्यादा आबादी हर रोज़ कम से कम एक वक्त चावल खाती ही है। कोई भात तो कोई फ्राइड राइस, बिरयानी, पुलाव, नूडल्स के रूप में खाता है। इतिहासकारों की मानें तो चावल की खेती ने बड़ी-बड़ी सभ्यताओं का विकास किया है। पहाड़, मैदान, समुद्री इलाके - चावल हर जगह उगाया जाता है। नेपाल में चावल की कुछ प्रजातियाँ समुद्र तल से दस-ग्यारह हज़ार फुट ऊँचे तक मिल जाएँगी। यहाँ चट्टानों को काटकर बनाए सीढ़ीदार खेतों में चावल होता है। केरल में समुद्र तल से नीचे तरावट वाली ज़मीन पर चावल उगाया जाता है। दक्षिणी भारत में गोदावरी-कावेरी और इनकी सहयोगी नदियों से सींची ज़मीन चावल की खेती के लिए बहुत मुफीद है। यहाँ के शासकों ने चावल की पैदावार बढ़ाने के लिए बड़े पैमाने पर जलबन्ध और नहरें बनवाई थीं। चावल की फसल पर उस जगह की समृद्धि काफी हद तक टिकी होती थी। भव्य मन्दिरों का निर्माण चावल की खेती से जुड़ा रहा है। तन्जावुर के बृहदेश्वर मन्दिर और मदुरै का मीनाक्षी सुन्दरेश्वर मन्दिर इसी के उदाहरण हैं।

भारत का बासमती दुनियाभर में मशहूर है। इसका मूल नाम सुवासमती है। यह लम्बा और सुगन्धित चावल पकने के बाद चिपकता नहीं है। खिला-खिला रहता है। वैदिक साहित्य में बासमती



का उल्लेख ढूँढने पर भी नहीं मिलता है। बढ़िया चावलों में शष्टिका और शल्यका का ज़िक्र मिलता है। शष्टिका की फसल बुआई से साठ दिन में तैयार होती थी।



बासमती के लिए सिंचाई बहुत ज़रूरी होती है। बीज अंकुरित होने के बाद इन्हें तर ज़मीन पर रोपा जाता है। पानी में झुककर खड़े-खड़े धान रोपना काफी तकलीफदेह काम है। देहरादून, अमृतसर और पटना की बासमती पड़ोसी पाकिस्तान के कुछ इलाकों की बासमती की तरह ही मशहूर है।

बासमती को इतना हाथोंहाथ लिया गया कि चावल की कई किस्में भूली रहीं। ये किस्में बहुत सख्त जान हैं। पानी की कमी और ऊसर ज़मीन पर भी ये पनप जाती हैं। चावल पर शोध करने वाले बताते हैं कि छत्तीसगढ़ में ही इसकी दो हज़ार से ज़्यादा प्रजातियाँ पाई जाती हैं। इनमें दूर्वराज (दूबराज), जवाफूल प्रसिद्ध हैं। इनका दाना बासमती से छोटा है पर स्वाद और खुशबू ज़रा भी कम नहीं। बंगाल के लोगों को गोविन्दभोग से बेहतर कोई चावल नहीं लगता। यही गोविन्दभोग ओडिशा में विष्णुभोग कहाता है। बिहारी और पूर्वांचली काला जीरा के आगे किसी को कुछ नहीं ठहराते हैं। उत्तराखण्ड में लाल चावल चलन में है। पकने के बाद यह हलका गुलाबी हो जाता है। इसमें खुशबू नहीं होती। न ही दाना लम्बा होता है। थोड़ा चिपको किस्म का भी है। पर स्वाद और पोषण इसमें भरपूर है। इससे भी गहरे रंग वाला लगभग काला चावल मणिपुर में पैदा होता है जिसकी गुड़वाली खीर बहुत प्रसिद्ध है। काले-बैंगनी या लाल रंग वाले चावल केरल में भी उगाए जाते हैं। इसे वर्जित या शासकों का चावल कहा जाता है। कहते हैं कि आम लोग रोज़मर्रा के खाने में इसे शामिल नहीं कर सकते थे।

चावल को उबालकर, भूनकर, चिवड़े के रूप में कूटकर भी खाया जाता है। ऐसे ही कोदो नामक मोटे अनाज वाले चावल के तन्दुलों की पोटली लेकर सुदामा अपने दोस्त कृष्ण से मिलने गए थे। दक्षिण भारत में चावल के आटे की पथीरी नामक रोटी भी बनाई जाती है। चावल के आटे से ओडिशा, बंगाल और असम में कई तरह के मीठे और नमकीन पीठे बनाए जाते हैं। बुन्देलखण्ड में चने की दाल की पीठी भरकर नमकीन फरे तैयार किए जाते हैं।

भारत में चावल खाने के अलावा पूजा आदि में भी काम में आता है। हिन्दुओं में शादी का न्योता पीले चावलों के साथ पठाया जाता रहा है। केरल में कथकली नृत्य में कलाकारों के मेकअप के लिए पिसे चावल का लेप लगाया जाता है। हमारे देश में ऐसे कमाल के कलाकार मिल जाएँगे जिन्होंने खुर्दबीन लगाकर गीता का पूरा श्लोक चावल के एक दाने पर खोद डाला हो।

यह बहस सालों से चली आ रही है कि चावल नामक जंगली घास को पहले पहल पालतू किसने बनाया। चीनियों ने या भारतीयों ने? इसका कोई नतीजा निकलेगा ऐसा लगता तो नहीं है। पर वैज्ञानिक मानते हैं कि दुनिया में चावल की दो मुख्य प्रजातियाँ हैं - चीनी और भारतीय।

चावल गाथा अभी तो शुरू ही हुई है। अभी तो कितने ही चावलों से मिलना बाकी है - जैसमिन राइस, बैम्बू राइस, एलिफेंट राइस... इनके बारे में फिर कभी।



स्टेशन जहाँ अब ट्रेन नहीं आती

कृष्ण कुमार
चित्रः तापोशी घोषाल

तारीख थी 15 सितम्बर और वर्ष 1885। सर्कस में जम्बो का खेल पूरा हो चुका था। वह पटरी पार करके अपने अड्डे पर लौट रहा था। उसे इंजन की आवाज़ सुनाई दी। वह भागा पर मालगाड़ी के इंजन से बच नहीं सका। वह इतना विशालकाय था कि इंजन और दो डिब्बे पटरी से उतर गए। जम्बो को लगी चोट गम्भीर थी। पन्द्रह मिनट बाद उसने आखिरी साँस ली।

वह सूडान में पैदा हुआ था जहाँ इस समय गृहयुद्ध की वजह से लगातार खून-खराबा हो रहा है। जम्बो कुछ बड़ा हुआ तो उसे एक अमरीकी सर्कस कम्पनी ले गई। उस समय अमरीका और कनाडा की सीमा पर आवाजाही एकदम खुली हुआ करती थी। सेंट टॉमस नाम का शहर, जहाँ जम्बो की मृत्यु हुई, कनाडा में है। कुछ दिन पहले इस शहर में प्रवेश करते हुए मैंने जम्बो की मूर्ति देखी। इस कद्दावर अफ्रीकी हाथी का वज़न छह हज़ार किलो था।

पटरी आज भी सेंट टॉमस से गुज़रती है पर ट्रेन की आवाज़ यहाँ आखिरी बार लगभग पैंतालीस साल पहले सुनी गई। सिर्फ मालगाड़ियाँ बची थीं। सवारी गाड़ी पन्द्रह वर्ष पहले - यानी आज से कोई साठ साल पहले बन्द की जा चुकी थी। बस और कार बची

थीं। पर अब तो बस भी नहीं के बराबर हैं। सिर्फ कारें दिन-रात गुज़रती हैं। संक्षिप्त-से बाज़ार की सड़क से गुज़रकर मैं स्टेशन पहुँचा तो देखा उसके आसपास कारों की पार्किंग के लिए काफी जगह छूटी हुई थी पर कारें बहुत कम थीं।

सूना स्टेशन अब एक म्यूज़ियम बनने जा रहा है। डेढ़ सौ साल पहले - 1870 के दशक में - इस सुन्दर स्टेशन पर कितनी चहल-पहल रहती होगी, इसका अन्दाज़ लगाना कतई मुश्किल नहीं है। स्टेशन की दोमंज़िला इमारत अब काफी सुधार दी गई है। वरना अगर मैं पच्चीस-तीस वर्ष पहले गया होता तो फर्श, सीढ़ियाँ और ईंटें भी टूटी-फूटी हालत में मिलतीं। अभी कुछ साल पहले पटरियों के करीब खुदाई की गई तो टूटी हुई प्लेटें और केतलियाँ मिलीं। चीनी मिट्टी के बरतनों में खाना जिस बड़े हॉल में परोसा जाता था, उसे सँवारा गया। एक परिवार ने यह हॉल शादी की दावत देने के लिए किराये पर लिया। स्टेशन के चार-छह कमरों में किराये पर कम्पनियों के ऑफिस चल रहे हैं।

प्लेटफॉर्म पर चलते हुए मुझे लगा जैसे स्टेशन एक बीते हुए युग के वैभव की कहानी सुनाने की बाट जोह रहा है। उस कहानी में न्यूयॉर्क और बफेलो जैसे बड़े अमरीकी शहरों से आने वाली ट्रेनों में भाप के इंजन धुआँ छोड़ते, सीटी बजाते आ-जा रहे हैं। सम्पन्न लोग उतरते हैं, डाइनिंग हॉल में खाना खाते हैं। एम्पायर स्टेट एक्सप्रेस उनके वापस जाने के इन्तज़ार में खड़ी रहती है।

तब सेंट टॉमस एक बड़ा जंक्शन था। तब न बिजली थी, न फोन। गैसबत्ती के प्रकाश में सारे काम होते थे। सन्देश देने के लिए टेलीग्राफ था जिसका डिब्बा एक काँच की अलमारी में सजा रखा है। वहीं पास में एक मेज़ पर दो अलग टुकड़ों वाला पुराना टेलीफोन रखा है जो ज़रूर बीसवीं सदी के शुरुआती दिनों का है। और पुरानी जासूसी फिल्मों में कभी-कभी दिखाई देता है। टेलीफोन के एक्सचेंज में नम्बर मिलवाने के लिए छेदों और तारों वाला बोर्ड भी रखा है। ऐसा बोर्ड मैंने टीकमगढ़ के एक्सचेंज में देखा था। नम्बर मिल जाने पर लोग ऊँची आवाज़ में बात करते थे। सेंट टॉमस के स्टेशन पर और भी ज़ोर से बोलते होंगे क्योंकि भाप के इंजन बहुत शोर करते हैं।

रेलगाड़ी जहाँ भी पहुँचती है, उस जगह को बदलकर रख देती है। मैंने ऐसा बदलाव पिछले दस-बारह सालों में टीकमगढ़ में शुरू होते देखा है। बसों पर दबाव घटा है, मज़दूरी की खोज में लोग महानगरों की तरफ पहले से ज़्यादा तादाद में जा रहे हैं। सेंट टॉमस में रेल अपने शुरुआती काल में आई थी और लगभग सौ साल अपनी ताकत दिखाकर चली भी गई। एक खेतीहर इलाका औद्योगिक बन गया। स्टेशन शुरू में पीली ईंटों से बना था। उन पर कोयले के धुएँ की कालिख छिपाने के लिए लाल रंग की परत चढ़ानी पड़ी। अब वह दिन दूर नहीं जब म्यूज़ियम बनकर यह स्टेशन पर्यटकों के आकर्षण का केन्द्र बन जाएगा। उसमें घुसने के लिए टिकट लेना पड़ेगा - शायद उसी खिड़की से जहाँ कभी एक दिन-रात में गुज़रने वाली सौ गाड़ियों के टिकट मिलते थे।

शहर छोड़ने से पहले मैं ईरी झील के किनारे गया। उसके पास ही रेलवे में काम करने वालों के घर थे जिनकी कतार अभी तक खड़ी है। शायद इन घरों का जीर्णोद्धार करके इन्हें पर्यटकों के रुकने लायक बनाया जाएगा। सामने ईरी का पानी किसी समुद्र से कम नहीं लगता। वहाँ कुछ समय रुककर वापस आते समय दोबारा जम्बो के पास से गुज़रा। सेंट टॉमस आज दुनिया में इसी हाथी के नाम से जाना जाता है। सर्कस का ज़माना करीब-करीब बीत चुका है। पर जम्बो की मूर्ति ज़िन्दा दिखती है। किसी शहर के प्रवेश मार्ग में खड़ा वह दुनिया का अकेला हाथी है।



तागरे का आजमहल

फ़रह अज़ीज़
चित्र: राजीव आइप



उलटी पुलटी ट्रेन में बैठे
बैठे उलटी बस में
तागरे के आजमहल
पहुँचे कस्सम कस में

पाँच रुपए का टिकट कटाया
हाय दंगे मर-मर
नोट बड़े निकले निक्कर से
खुदरे माँगे दर दर

आजमहल के चार किनारे
मिली नहीं मीनारें
लेकिन जमुना मिली बराबर
पीली पतली धारें

नक्काशी तो मिली मगर
निगल-उगल अन्दाज़ में
किसने, कहाँ पे, क्या किया
क्या जाने इतिहास में

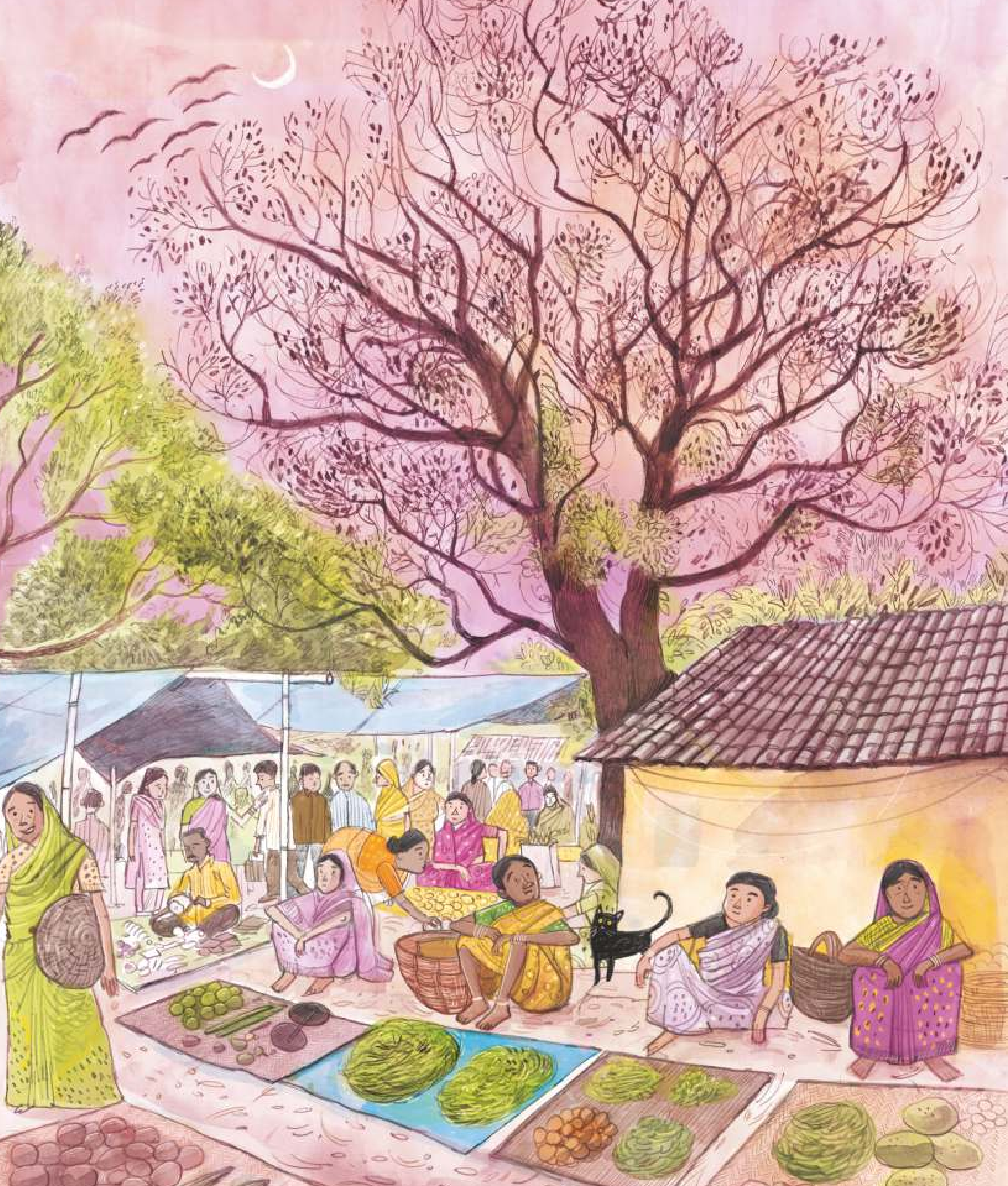
दफ्न हुईं दुमताज दहल जब
पेट दर्द के मारे
मिला न कोई यूरीनल
तो बैठीं नाले नाले

तो आजमहल में आहजहाँ ने
बनवाया था टॉयलेट
चिकनी चुपड़ी टाइल लगी थी
उजली नीली वॉयलेट

उलटी पुलटी ट्रेन में बैठे
बैठे उलटी बस में
तागरे के आजमहल
पहुँचे कस्सम कस में







पेड़ों का गाँव- सारजोमडीह

जसिन्ता केरकेट्टा
चित्रः प्रिया कुरियन

आदिवासी दुनिया में पेड़ों का भी अपना गाँव होता है। पेड़ों के गाँव में पेड़ों के बीच आदिवासी रहते हैं। जब लोग पेड़ों के गाँव में रहते हैं तब उस गाँव में दूसरे पेड़ों को भी बुला लाते हैं। इस तरह पेड़ों का गाँव पीढ़ी दर पीढ़ी आबाद रहता है। वहाँ इंसानों के नाम पर गाँव के नाम नहीं होते। पेड़ों के गाँव में बसे लोग पेड़ के नाम से ही गाँव का नाम जानते हैं। पीढ़ी दर पीढ़ी।

झारखण्ड में राँची ज़िले के बुण्डू प्रखण्ड में जंगलों के भीतर एक गाँव है। सारजोमडीह। सारजोमडीह मुण्डारी भाषा का शब्द है। इसका अर्थ है 'सखुआ के पेड़ों का गाँव'। मुण्डारी में सखुआ के पेड़ को सारजोम कहा जाता है। गाँव के बुज़ुर्ग बताते हैं कि झारखण्ड के मुण्डा आदिवासी इलाकों में देश के अलग-अलग हिस्सों से लोग आकर बसने लगे। उनकी भाषा अलग थी। न वे मुण्डा आदिवासियों की भाषा समझते थे, और न मुण्डा आदिवासी उनकी। दोनों के बीच अकसर संघर्ष होता था। तब लोग जंगलों के और भीतर जाने लगे। ऐसे ही एक मुण्डा आदिवासी परिवार के तीन भाई जंगलों के और भीतर गए। तीनों ने अलग-अलग पेड़ों से शरण माँगी। एक भाई को सारजोम पेड़ों ने शरण दिया। उन दिनों यह इलाका घना जंगल था। जंगल में जहाँ कई सारजोम थे, उन्होंने ठीक वहीं पूजा-स्थल बनाया। यह आदिवासियों का सरना-स्थल कहलाया। सारजोम के पेड़ों से ज़मीन तैयार करने और गाँव बसाने की अनुमति माँगी गई। कुछ दिनों तक इन्तज़ार किया कि पेड़ अपनी तरफ से क्या सन्देश भेजते हैं। एक दिन तेज़ हवाएँ चलीं और कुछ सारजोम के पेड़ खुद-ब-खुद गिर गए। उन्होंने उनकी लकड़ी से पहला घर बनाया। धीरे-धीरे और लोग भी बसने लगे। एक छोटा-सा गाँव बन गया। अब यहाँ सत्तर परिवार रहते हैं। आज भी दूर-दूर तक छोटी टुंगरी (पहाड़ी) में सारजोम के पेड़ फैले हुए हैं। इस गाँव में पलाश के पेड़ भी साथ-साथ रहते हैं। धीरे-धीरे आम, इमली, बरगद, पीपल, कुसुम जैसे और भी पेड़ गाँव में बसने लगे। विशाल इमली के पेड़ की छाया में सारजोमडीह में हर सप्ताह बुधवार को हाट लगता है। बीस से ज़्यादा गाँव इस हाट में आते हैं।

सारजोमडीह के पास ही कांची नदी है। मुण्डारी में कांची का अर्थ है, 'बाँस का दउरा या डलिया'। यह नदी सीमा का काम भी करती है। इसके इस पार राँची और उस पार खूँटी ज़िला रहता है। नदी में एक पुल है। यह दोनों ज़िलों के जंगल को जोड़ता है। लोगों को भी। इस गाँव में सालोंसाल हरियाली बनी रहती है। गर्मियों में भी। जब जंगल में पत्ते झड़ चुके होते हैं तब सारजोम के सुनहरे हलके पीले फूल जंगल में खुश रंग भर देते हैं। जंगल पलाश के फूलों



और कुसुम के लाल पत्तों से दमकने लगता है। खेतों में धान की हरियाली पसर जाती है। बरसातों में भी लोग धान लगाते हैं। पर गर्मी में धान की खेती बहुत अच्छी होती है। पूरा इलाका लाल, नारंगी, भूरे, पीले और हरे रंग से घिरा रहता है। नदी की बालू भी धूप का रंग ओढ़ लेती है।

सारजोमडीह में लोगों ने सत्तर साल पहले मिट्‌टी का एक स्कूल बनाया था। गाँव के घसिया मुण्डा ने स्कूल के लिए ज़मीन दी थी। और बच्चों को पढ़ाने के लिए दूसरे गाँव से बिरसा मुण्डा नाम के एक शिक्षक को बुलाया। दूसरे गाँव से महेश मुण्डा को भी बुलाया। उन्हें भी ज़मीन दी। वह इसी गाँव में बस गए। गाँव के बच्चे मन लगाकर पढ़ते नहीं थे। तब बिरसा मुण्डा गुस्से में कहते थे, "इस गाँव से कभी किसी को सरकारी नौकरी नहीं मिलेगी।" सत्तर सालों में इस गाँव के बहुत बच्चे उच्च शिक्षा पा चुके हैं पर किसी की सरकारी नौकरी नहीं लगी। लोग कहते हैं, "एक शिक्षक का श्राप गाँव को लग गया है।" हर पढ़ा-लिखा युवा इस श्राप को बदलने की कोशिश कर रहा है। सभी पढ़े-लिखे हैं। पर सभी खेती करते हैं। कुछ मज़दूरी करने बाहर जाते हैं।

इधर जब से जंगल के बाहर नई सड़कें बनी हैं, मुण्डारी शब्दों वाले गाँवों के नाम बदल दिए जा रहे हैं। सारजोम सरजम बन गया है। और कांची नदी काची। हिन्दी भाषा में इसका कोई अर्थ नहीं है। सारजोम पेड़ों का एक गाँव सारजोमडीह अपने होने के अर्थ और अस्तित्व, दोनों को बचाने का संघर्ष कर रहा है।





एक किसान, एक डाकिया!

पीयूष सेकसेरिया
चित्रः शुभम लखेरा



ओरिएंटल पाइड हॉर्नबिल

लम्बी चोंच और लम्बी पूँछ वाले हॉर्नबिल दिखते हैं तो उन्हें थोड़ा रुककर देखने का मन होता है। जैसे, वे सीधे डायनासॉर के टाइम से चले आए हैं। लम्बी, मुड़ी हुई चोंच पर सींग जैसे उभार की वजह से ही उन्हें हॉर्नबिल नाम मिला। हॉर्नबिल की आवाज़ पैनी-चुभती-सी होती है। ये उड़ते हैं तो पंखों से तेज़ हवा के बहने जैसी आवाज़ होती है। अण्डे देने से चूज़े निकलने तक ये बहुत कठिन समय बिताते हैं। मादा हॉर्नबिल किसी पेड़ की खोखल में घुसकर बैठ जाती है। खोखल का मुँह बन्द कर देती है। बस एक छोटा-सा छेद छोड़ देती है। नर इस छेद में से पहले मादा को और बाद में चूज़ों को भी ला-लाकर खाना देता है।

हॉर्नबिल खाते तो सब कुछ हैं - फल, कीड़े, छोटे जीव वगैरह सब। पर फल इनकी खास पसन्द हैं। अलग-अलग फाइकस प्रजाति के अंजीर और दूसरे बड़े फल और बेर-जामुन जैसे गूदे-गुठलीवाले फल। आमतौर पर ये फल लाल, काले या नारंगी रंग के होते हैं। अंजीरों में तो कहिए कि इनकी जान बसती है।



मालाबार ग्रे हॉर्नबिल



नारकॉन्डम हॉर्नबिल का जोड़ा



रूफस नेक्ड हॉर्नबिल



इंडियन ग्रे हॉर्नबिल



ग्रेट हॉर्नबिल

दुनियाभर में हॉर्नबिल की 62 प्रजातियाँ हैं। इनमें से 9 भारत में हैं। सबसे आम, इंडियन ग्रे हॉर्नबिल तो शहरों में बरगद, पीपल जैसे अंजीर परिवार के पेड़ों के पास खूब दिखते हैं। ये दो फुट (इंडियन ग्रे हॉर्नबिल) से लेकर चार फुट (ग्रेट हॉर्नबिल) तक लम्बे होते हैं। अण्डमान का एक द्वीप है – नारकॉन्डम। नारकॉन्डम हॉर्नबिल बस यहीं रहते हैं। नाम भी इन्हें इसी से मिला है।



रीद्‌थ हॉर्नबिल



ब्राउन हॉर्नबिल

फल खाने से पहले हॉर्नबिल अपनी चोंच से जायज़ा लेते हैं कि वो कितना नर्म है। फिर अपनी लम्बी चोंच से पेड़ों-झाड़ियों से उन्हें तोड़ते हैं और छीलकर साबुत निगल जाते हैं। गूदा इनके पेट में पच जाता है। और बड़े बीजों को वो थूक देते हैं। छोटे बीज बीट से निकलते हैं। जहाँ-जहाँ ये बीज गिरते हैं, वहाँ-वहाँ एक पेड़ की सम्भावना बन जाती है।

देवदार जैसे शंकु के आकार वाले (कैनारियम) दुर्लभ पेड़ों की तरफ हॉर्नबिल खिंचे आते हैं। और जब आते हैं तो अलग-अलग पेड़ों के बीज भी फैला जाते हैं। इससे वहाँ भी फलदार पेड़ उग आते हैं। फिर ये फलदार पेड़ भी हॉर्नबिलों को रिझाने लगते हैं।

बारबेट, बुलबुल जैसे पक्षी छोटे फल ही खा पाते हैं। बड़े बीजों का फैलाव हॉर्नबिलों पर निर्भर करता है। हॉर्नबिल साबुत फल को निगल सकते हैं, इसलिए बीज को नुकसान नहीं पहुँचता। छोटी चोंच वाले पक्षी गूदा खाते समय बीज को नुकसान पहुँचा सकते हैं।

हॉर्नबिल द्वारा ताज़े थूके बीज गुलाबी रंग के होते हैं। हॉर्नबिल पर शोध करने वाली अपराजिता दत्ता ने एक बार अरुणाचल प्रदेश के पक्के टाइगर रिज़र्व में एक ग्रेट हॉर्नबिल का पीछा किया। पहले उसने लॉरेल (तेजपत्ता) के काले फल खाए और अंजीर के पेड़ पर बैठ गया। वहाँ उसने बीज थूके। उसके उड़ने के बाद अपराजिता ने छूकर देखा। वे गर्म, साफ और गुलाबी थे। शायद हॉर्नबिल के पेट में पचाने के दौरान पैदा एसिड के कारण वे गुलाबी हुए हों। ज़्यादातर बड़े बीज मुँह के रास्ते बाहर निकलते हैं। केवल अंजीर जैसे छोटे बीज बीट के साथ निकलते हैं। अगर हॉर्नबिल वाले जंगल में घूमो तो उन पेड़ों के नीचे ज़रूर देखना जहाँ वे बैठते हैं या घोंसला बनाते हैं।

हॉर्नबिल फलों की खोज में लम्बी दूरी तक उड़ते हैं। कई हॉर्नबिलों को फल और बीज पचाने में दो घण्टे तक लग जाते हैं। इस बीच वे मूल पेड़ से बहुत दूर उड़ जाते हैं। तभी तो वे कहीं का खाया कहीं दूर थूक देते हैं। इससे बीजों का फैलाव दूर-दूर तक होता है। अध्ययनों के अनुसार, हॉर्नबिल की कुछ प्रजातियाँ एक दिन में दो-तीन हज़ार तक बीज 250 मीटर से 10 किलोमीटर दूर तक फैला सकते हैं। जहाँ बीजों को अच्छी आबोहवा मिलती है, वे पेड़ बन जाते हैं।

इसीलिए हॉर्नबिल को जंगल का किसान कहा जाता है। सैकड़ों फलदार पेड़ों की प्रजातियों के बीज फैलाकर ये घने उष्णकटिबन्धीय जंगलों में हरियाली बनाए रखते हैं। और इनकी नाज़ुक इकोलॉजी को भी तन्दुरुस्त बनाते हैं। एक दुर्लभ रीद्थ हॉर्नबिल है। यह 162 पौधों की प्रजातियों के फल खाने और बीज फैलाने के लिए जाना गया है।

हॉर्नबिल जिन बड़े बीजवाले पेड़ों को फैलाते हैं, उनमें कुछ संकटग्रस्त पेड़ भी शामिल हैं। जैसे, जायफल परिवार के पेड़। इन्हें 'हॉर्नबिल फ्रूट ट्री' भी कहा जाता है। हॉर्नबिलों की मेहरबानी से इनके बीज बिना वीज़ा-टिकिट के कहाँ से कहाँ पहुँच जाते हैं।

बीजों के इन शानदार डाकियों को अगर हम खो देते हैं तो हमारे जंगलों से कितने ही पेड़ खो जाएँगे। और जंगल एक वीरान जगह बन जाएगी। और फिर किसे उड़कर आता हुआ देखने हम रुकेंगे...





बैलगाड़ी का रिक्शा

विनोद कुमार शुक्ल । चित्रः तापोशी घोषाल

किसी समय की बात है कि दो सवारी का रिक्शा था। और इसमें एक बैल जुता होता था। चार सवारी का भी बैल-रिक्शा था। इसमें दो बैल जुते होते थे। हर चौराहे के पास ये खड़े रहते थे। जो बैलगाड़ी चलाने वाले थे उनके बैल अपने हाँकने वालों की आवाज़ पहचानते थे। बैल भी स्वयं सड़क पर चलना जानते थे, चाहे बैलगाड़ी चलाने वाले गाड़ी पर हों या न हों। कई बार गाड़ी चलती रहती और बैलगाड़ी वाला बैठे-बैठे सोया रहता। अगर बैलगाड़ी वाला बैलगाड़ी से कुछ दूर चार बैलगाड़ियों के साथ खड़ा रहता है और वह बैलगाड़ी बुलाने की आवाज़ देता तो बैल उसकी बैलगाड़ी लिए उसके पास चले आते। जैसे मोटरगाड़ी चलाने वाला चालक मोटरगाड़ी लेकर आ जाता है। बैलगाड़ी वालों की जगह निश्चित थी। वहीं वे सब अपनी बैलगाड़ी लेकर खड़े रहते थे। दो सवारी वाली गाड़ी पर यदि एक यात्री सवार होता तो उससे दो सवारी का किराया लिया जाता। इसी तरह परिवार वाले - तीन सवारी चार सवारी वाले बैलगाड़ी पर बैठते जो एक ही जगह उतरते, उनसे चार यात्रियों का किराया लिया जाता। यह जाना-पहचाना नियम था।

जहाँ बैल-रिक्शा खड़े होने की जगह होती वहाँ एक लम्बे टाँके में बैलों के लिए पानी भरा होता। गाड़ी के टूट-फूट को सुधारने की दुकान भी होती। ओंग के तेल बैलगाड़ी के चक्कों में डालने वाले भी होते।

बड़ा शहर था। सड़क पर बैल नियम से चलते थे। बैलगाड़ी वाला ऊँघता बैठा रहता, तब भी। कभी पीछे से आ रही बैलगाड़ी अचानक खड़-खड़ करते आगे निकलती तो ऊँघता पीछे बैठा गाड़ीवाला भी अपने बैल की पूँछ मरोड़ कर गाड़ी की गति बढ़ाता। और गाड़ी आगे निकल जाती।

तभी ऊपर से हवाई जहाज़ जाने की आवाज़ सुनाई देती है। गाड़ी में बँधे बैल भागते हुए हवाई जहाज़ देखने की कोशिश करते। तब उनके कान सजग हो जाते। गर्दन मोड़कर हवाई जहाज़ को निहारने की कोशिश करते।

बैलों का हवाई जहाज़ से क्या सम्बन्ध! क्या वे सोचते होंगे कि एक दिन हवाई जहाज़ पर वे जुते होंगे और हवाई जहाज़ ऊपर उड़ रहा होगा?

जान दयाज़ की साइकिल-2

जसिन्ता केरकेट्टा

चित्रः एलन शॉ





जान दराज़ 1979 में बेल्जियम से भारत आए थे। बेल्जियम में वे अपना आना-जाना साइकिल से किया करते थे। भारत में भी कुछ समय तक तो साइकिल चलाना आसान रहा। पर धीरे-धीरे दिल्ली शहर फैलता गया। जान दराज़ के लिए इस शहर को साइकिल से नाप पाना मुश्किल होता गया। गाड़ियों की भीड़ के बीच सड़कों पर साइकिल के लिए कहीं जगह नहीं बची थी। वे कहते हैं, "जैसे चौड़ी सड़कों पर पैदल चलने वालों के लिए अकसर जगह नहीं होती है, वैसे ही तेज़ चलती गाड़ियों के बीच साइकिल चलाने के लिए भी सड़कों पर कोई जगह नहीं होती है। सड़कें हमारे समाज के बारे में बताती हैं।"

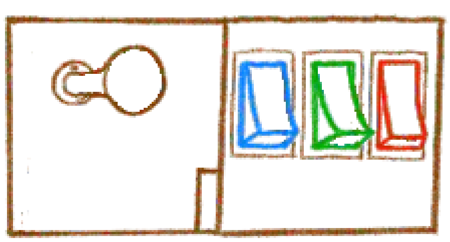
साइकिल की कहानी भी सड़क और समाज की इस कहानी से मिलती-जुलती है। दिल्ली से जान दराज़ इलाहाबाद गए। ज़ाहिर है, वहाँ भी वे साइकिल चलाते रहे। उन दिनों वह दिल्ली और इलाहाबाद दोनों जगह विश्वविद्यालय में पढ़ाया करते थे। सड़कों पर साइकिल के लिए जगह नहीं होने के बावजूद उन्होंने साइकिल चलाना नहीं छोड़ा। वे कहते हैं, "एक व्यक्ति के साथ-साथ समाज के लिए भी साइकिल सबसे अच्छा साधन है। यह स्वास्थ्य के लिए अच्छा है। सस्ता और सुरक्षित भी है। साइकिल न शोर करती है, न किसी को कुचल देने या धक्का दे देने की धमकी देती है। और न ही धुआँ छोड़ती है।"

वे याद करते हैं कि बेल्जियम में साइकिल चलाते हुए लोगों को देखना आम बात है। वहाँ साइकिल चलाने को लेकर बड़ी प्रतियोगिताएँ होती हैं। राजमार्ग को छोड़कर वहाँ की हर सड़क पर साइकिल के लिए अलग से रास्ते बने हुए हैं।

भारत में रहते हुए अब उन्हें लगभग पैंतालीस साल हो चुके हैं। वे कहते हैं कि इस दौरान साइकिल का लगभग कोई भी पुर्ज़ा बदला नहीं है। इस बीच देश-दुनिया ने तकनीकी क्षेत्र में बहुत तरक्की की है। पर साइकिल बहुत नहीं बदली। आज भी उसमें लाइट की व्यवस्था नहीं है। अँधेरे में घण्टी बजाते रहना पड़ता है। दूसरे देशों की साइकिल में गियर और बत्ती तो पहले से ही थी। अब तो उसे मोड़कर छोटा भी किया जा सकता है। और इलेक्ट्रिक साइकिल और पहाड़ों पर चढ़ने वाली साइकिल भी आ गई है। पर हमारे यहाँ आमतौर पर साइकिल में कोई बदलाव नहीं आया है। यहाँ तक कि साइकिल मरम्मत करने वालों के पास भी वही औज़ार हैं जो चालीस साल पहले हुआ करते थे। आज भी साइकिल में हवा भरने के लिए दो लोग लगते हैं। एक आदमी साइकिल का नोज़ल पकड़ता है और दूसरा पम्प से हवा भरता है। क्यों किसी इंजीनियर ने साइकिल के पम्प के डिज़ाइन पर काम करने के बारे में नहीं सोचा?

जान दराज़ इन दिनों राँची में रहते हैं। अँधेरा घिरने से पहले वे घर लौटने की जल्दी में होते हैं। लौटते में जान दराज़ साइकिल की घण्टी बजाते हुए सोचते होंगे कि अगर साइकिल सभी लोगों का वाहन होता तो भी उसके डिज़ाइन पर क्या किसी का ध्यान न गया होता!

माथापच्ची



मान लो एक कमरे में एक बल्ब है। और दूसरे कमरे में तीन स्विच हैं। उन पर नीला, हरा और लाल निशान लगा है। दोनों कमरों में रोशनी का एक कतरा तक नहीं आ सकता। तुम्हें उस बल्ब के सही स्विच का पता लगाना है। शर्त यह है कि यदि एक स्विच को सही मान कर तुम बल्ब वाले कमरे में गए और वो सही नहीं हुआ तो तुम पता लगाने वापस नहीं जा सकते।

नीले निशान वाले स्विच को दो मिनिट तक ऑन रखो। फिर हरे स्विच को ऑन कर बल्ब वाले कमरे में चले जाना। बल्ब जलता मिले तो हरा ही सही स्विच हुआ। अगर नहीं तो बल्ब को छू कर देखना। बल्ब गरम है तो नीला स्विच बल्ब का हुआ। अगर बल्ब बुझा हुआ और ठण्डा मिले तो लाल स्विच बल्ब का सही स्विच है।

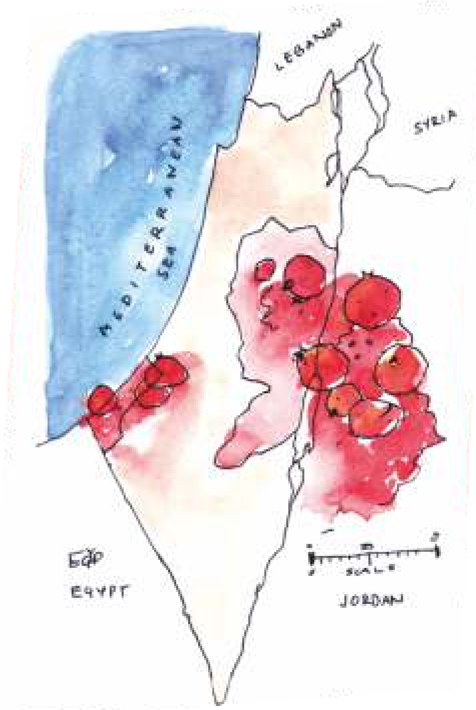


चित्रकथाः ऋषि साहनी

जब मुझे अपनी किताबें जलानी पड़ीं

सलमा अबू हेलो

बचपन से ही मैं और मेरे भाई-बहन अपनी पॉकेट मनी किताबों में लगा दिया करते थे। किताबों के लिए यह दीवानापन हमको हमारी अम्मी से मिला था। पढ़ना शौक भर नहीं था। वो हमारे रहने का तरीका था। अम्मी-अब्बू ने हमें तोहफे में घर पर एक लाइब्रेरी बनाकर दी थी। तब मैं पाँच साल की थी। तब भी मुझे यह अहसास था कि वो घर का सबसे मुकद्दस कोना है। इस लाइब्रेरी में तरह-तरह की किताबें शुमार थीं। अम्मी-अब्बू हमको समीर मंसूर लाइब्रेरी से सटी किताब की दुकान पर ले जाते थे। हर बार हम सात-सात किताबें चुनकर ला सकते थे।









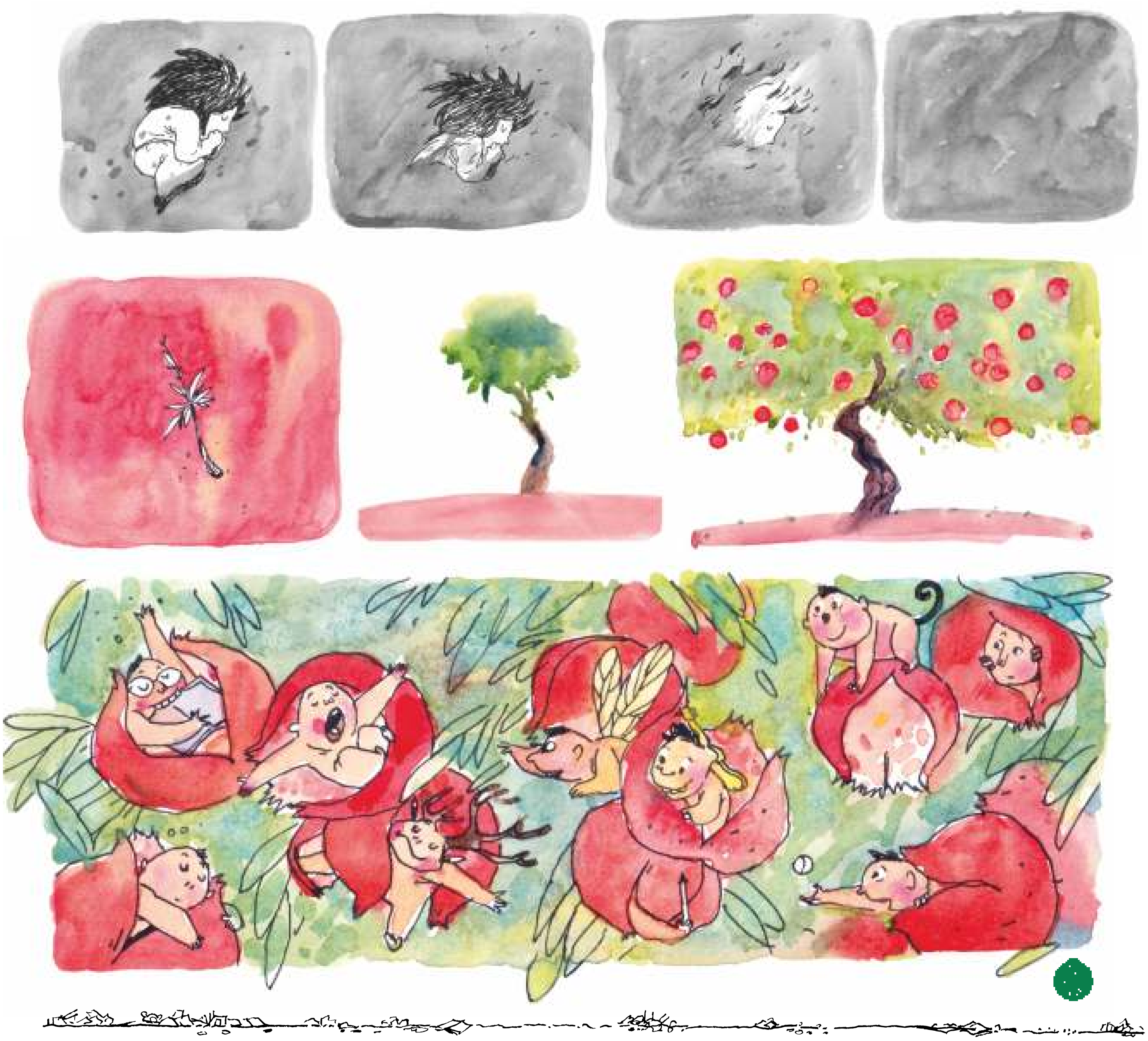
अक्टूबर 2023 में तबाही का यह दौर शुरू हुआ। पानी, ज़रूरत की चीज़ें और फिर ईंधन की किल्लत हुई। जब गैस खत्म हुई तो जो कुछ लोगों के पास जलाने लायक था, जलाया गया। हमारे खानदान में सबसे पहले भांजों की नई खरीदी किताबें जलाई गईं। मेरा दिल टूट गया। मेरे ग्यारह साल के भांजे अहमद ने मुझसे कहा, "देखिए भूख से मर जाना या अनपढ़ रह जाना- यही दो रास्ते थे। मैंने ज़िन्दा रहना चुना। पढ़ाई बाद में वापिस शुरू कर लूँगा।"

जब हमारे यहाँ गैस खत्म हुई तो मैंने ज़िद की के हम लकड़ी खरीद लेते हैं। मगर लकड़ी तो सोने के भाव थी। अब्बू बोले, "एक दफे ये जंग खत्म हो जाएगी तो तुम जो बोलो वो किताब तुम्हें दिलवा देंगे।" मैं फिर भी अड़ी रही।



मैंने उनमें से कुछ को दोबारा पढ़ना शुरू कर दिया। उनके कवर को, पेज-दर-पेज हरेक बात को मन में बिठाना शुरू कर लिया। मुझे पता था कि इनकी कुर्बानी अब ज़्यादा दूर नहीं है।

इस साल जनवरी में जंग कुछ रुकी। रसोई गैस गज़ा पहुँचने लगी। मुझे चैन आया। कि चलो मैं और मेरी किताबें तबाही से बच गए। मगर मार्च आते-आते फिर वही सब शुरू हो गया। सबसे पहले मैंने अंतर्राष्ट्रीय कानून और मानव अधिकारों पर लिखी हुई मोटी-मोटी किताबों को जलाया। उनके कोई मायने नहीं थे। फिर मेरे भाई की मेडिसिन की पढ़ाई की किताबें जलाईं। उसके लिखे नोट्स और सालों की मेहनत पर हमने अपना खाना पकाया। फिर मेरी किताबों की बारी आई। दर्विश, जिब्रन, अल-कासिम,

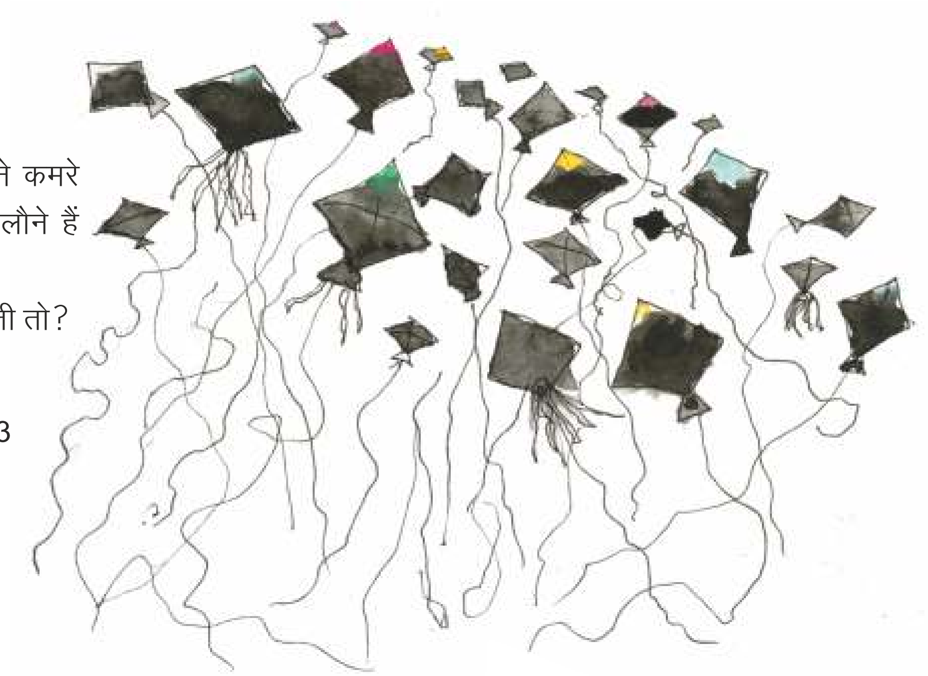


अब्दुलरहमान मुनीफ, हैरी पॉटर और मेरी डॉक्टरी की किताबें। इसके बाद अब्बू ने वो लकड़ी का पूरा शेल्फ तोड़-तोड़कर इस्तेमाल में लेना शुरू कर दिया। मैंने जैसे-तैसे पन्द्रह किताबें बचा लीं। फिलिस्तीन पर लिखी गई किताबें। इनमें से कुछ मेरी दादीजान की थीं। इस तबाही में वे भी मारी गई थीं।

अगर हम ज़िन्दा रहे तो फिर से इस लाइब्रेरी को आबाद कर लेंगे।

साभार - अल जज़ीरा, 29 अप्रैल 2025

प्रस्तुतिः तज़ीन अली

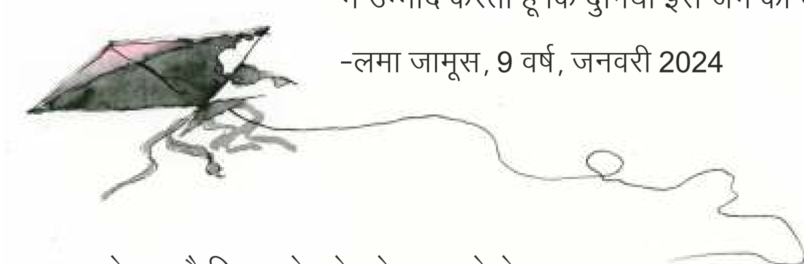


मुझे अपने घर में सबसे ज़्यादा याद अपने कमरे की आती है। उसमें सबकुछ है। मेरे खिलौने हैं और वो सबकुछ जो मुझे चाहिए।
क्या? अगर मैं वापस जाकर कुछ ला सकती तो?
तो मैं पूरा घर उठाकर ले आऊँगी।

– लिना अल ताहेर, सात वर्ष, नवम्बर 2023

सभी को हैलो,
आप देख सकते हैं, इस वक्त मैं मिस्र की सरहद के करीब रफह में हूँ।
यह हमारा आखिरी पड़ाव है।
यहाँ लोग टेंटों में हैं। ठण्ड से गल चुके हैं।
खाना, पानी कुछ नहीं है।
हमने सारी दुनिया से कहा कि देखो, यहाँ क्या-कुछ हो रहा है। पर कोई जवाब नहीं आया।
मैं उम्मीद करती हूँ कि दुनिया इस जंग को खत्म करेगी। हम वापिस अपने घर लौट सकेंगे।

–लमा जामूस, 9 वर्ष, जनवरी 2024



मुझे याद है कि हमारे बड़े हमेशा कहते थे –
किसी को भूखे पेट नहीं सोना पड़ता।
कि अपने वतन में कोई भूख से नहीं मरता।

लेकिन हम रोज़ भूखे पेट सोने जा रहे हैं।
अगर हम बम से बचे तो
हम भूख से मर जाएँगे।

– एक ग्यारह साल की बच्ची, मार्च 2024

(‘अ मिलियन काइट्स’ गज़ा के बच्चों की लिखी कविताओं का संग्रह है।
इन्हें 2023-2024 में जुटाया गया था। ये कविताएँ इसी संग्रह से साभार ली गई हैं।)

प्रस्तुतिः तज़ीन अली

पेड़ को चिट्ठी

प्रस्तुतिः यादवेन्द्र

चित्रः हबीब अली

कैलिफोर्निया के बर्कले बौद्ध मठ के परिसर के नज़दीक खड़ा सौ साल का पेड़ डगलस फ़र बीमार हुआ। इसकी डालियाँ बार-बार गिर रही थीं। कोई कभी भी इसकी चपेट में आ सकता था। अन्ततः इस पेड़ को हटाने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय को मठ के हेंग स्यूर ने भारी मन से स्वीकारा। उन्होंने इस पेड़ और इस पर रहने वाले सभी जीवों से क्षमा माँगी। क्षमा माँगने एक चिट्ठी भी लिखी। इस चिट्ठी को जूलिया गोरलिट्ज ने फेसबुक पर साझा किया। चिट्ठी की इबारत कुछ यूँ है –

शानदार और सजीले डगलस फ़र
और तुम पर रहने वाले सभी परिन्दे, कीड़े-मकोड़े, सब लोग
ग्रांट और बैनक्रॉफ्ट स्ट्रीट, बर्कले

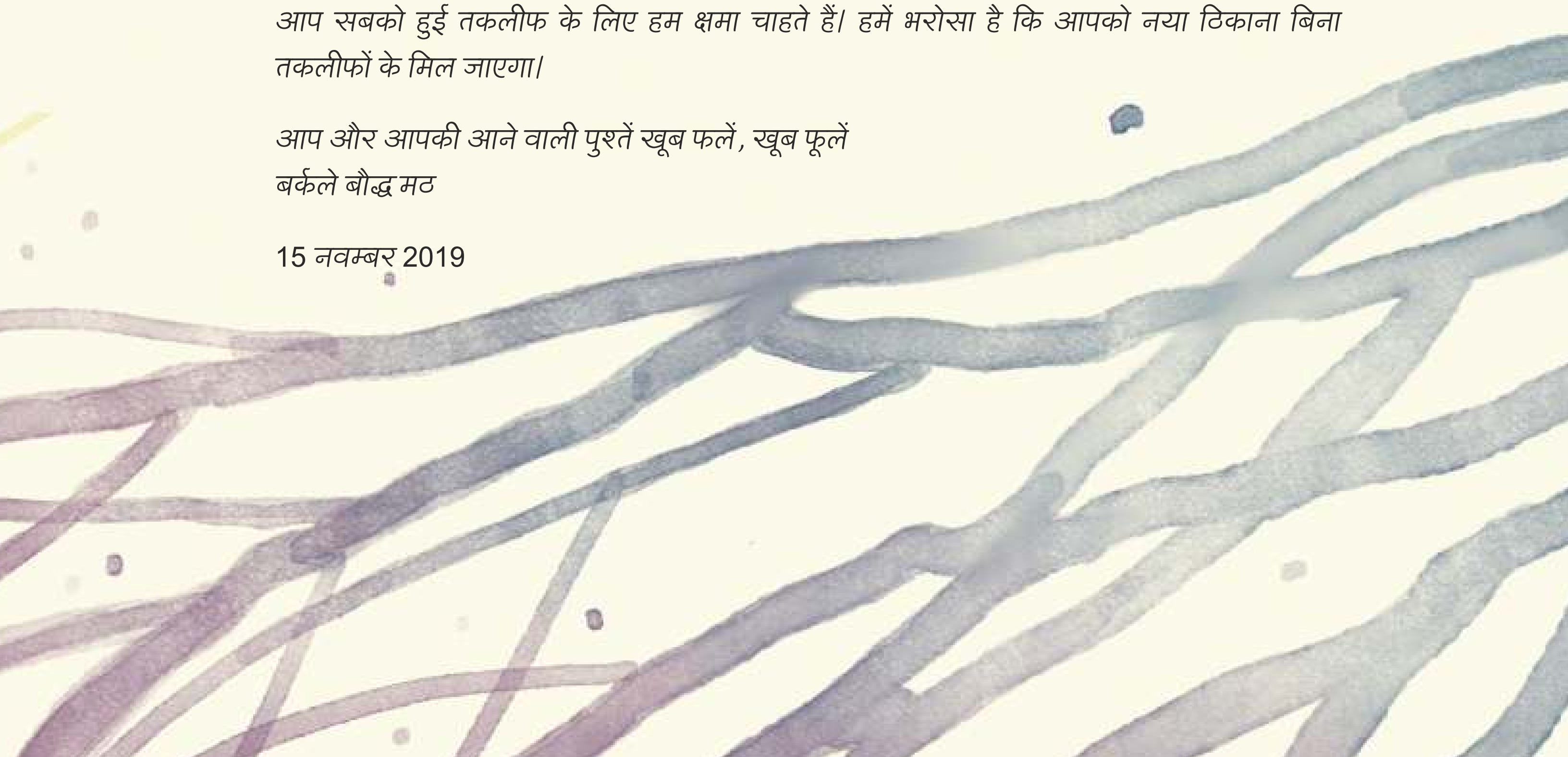
बहुत आदर सहित हम यह सूचना देना चाहते हैं कि आपकी नाज़ुक सेहत और पास-पड़ोसियों की सुरक्षा के मद्देनज़र हमें यह फैसला लेना पड़ा है कि अगले सोमवार, 18 नवम्बर 2019 को आपको अपने स्थान से हटा दिया जाए। आपके सौ साल के साथ और हम पर सुकूनी छाँव के लिए हम आपके आभारी हैं। दुआ करते हैं कि आपकी रूह को भी आप जितनी ही घनी छाँव मिले।

इस पेड़ पर रहने वाले सभी बाशिन्दों से दरख्वास्त है कि आप भी अगले सोमवार से अपने लिए कोई नया ठिकाना ढूँढ लें। हमारा इरादा आपको नुकसान पहुँचाने का कतई नहीं है।

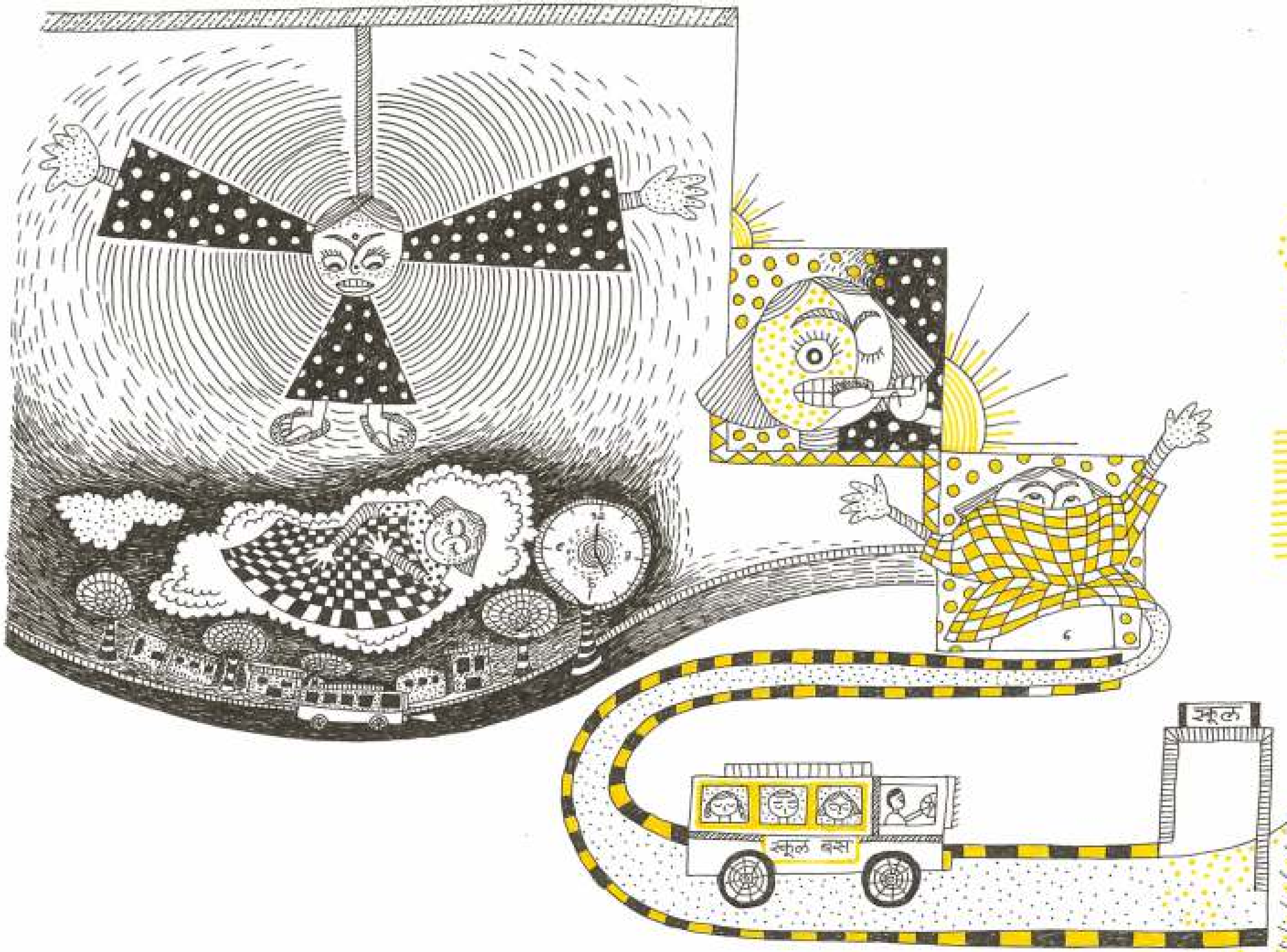
आप सबको हुई तकलीफ के लिए हम क्षमा चाहते हैं। हमें भरोसा है कि आपको नया ठिकाना बिना तकलीफों के मिल जाएगा।

आप और आपकी आने वाली पुश्तें खूब फलें, खूब फूलें
बर्कले बौद्ध मठ

15 नवम्बर 2019





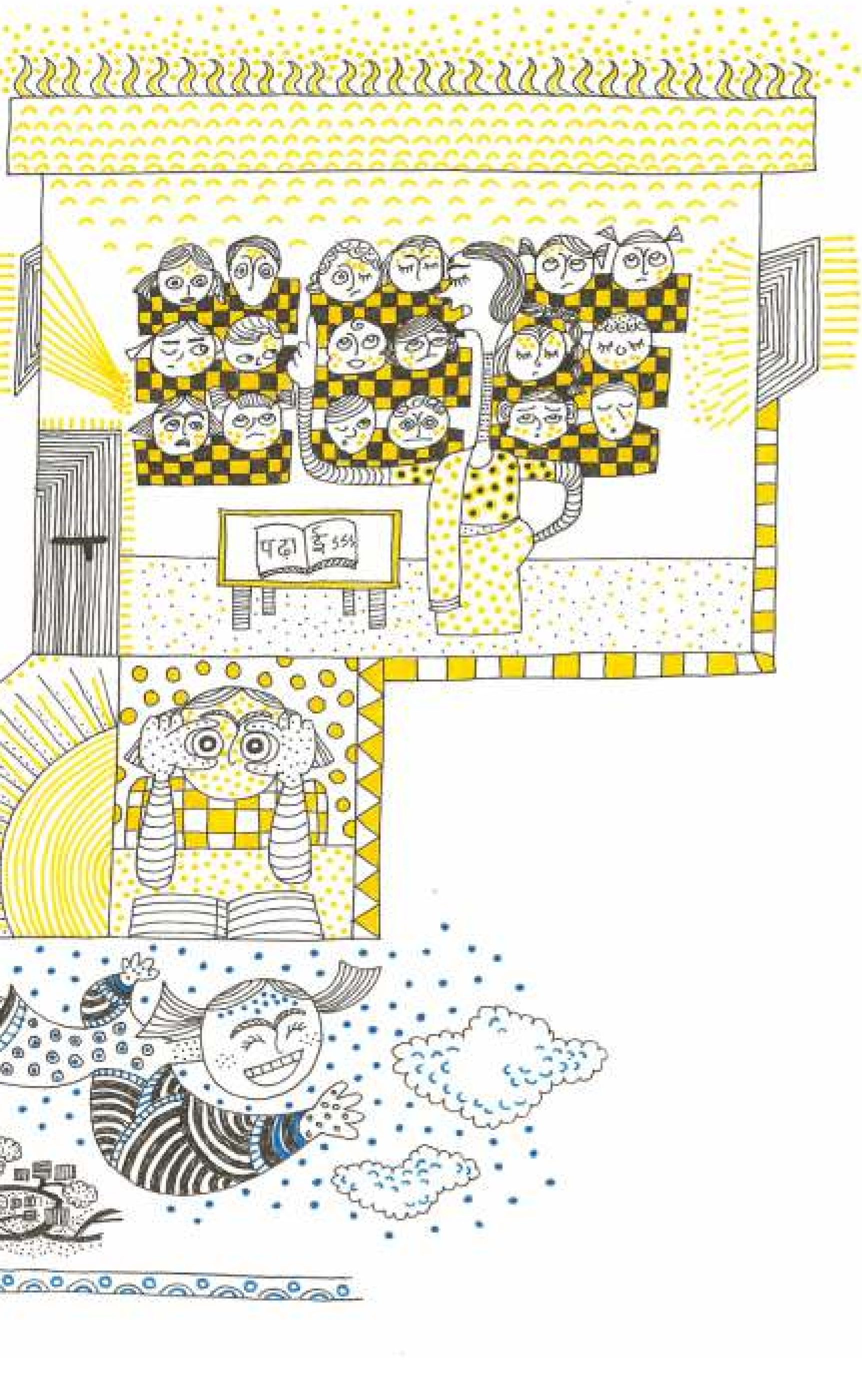


क्लास सोने की जगह नहीं

रामकरन
चित्रः सानिका देशपाण्डे



इस साल मैं चौथी में आई हूँ। गर्मी शुरू हो गई है। धूप चुभने लगी है। मेरी क्लास दूसरी मंज़िल पर है। नीचे नर्सरी, एल के जी, यू के जी से तीसरी तक की क्लास लगती है। दूसरी मंज़िल को धूप ज़्यादा मिलती है। छत गर्म हो जाती है तो गर्मी को नीचे ठेल देती है। पंखा चलता है तो गर्म हवा आती है। खिड़की-दरवाज़े बन्द कर दो तो भी धूप अन्दर घुस आती है। खिड़कियाँ कम



खुली हों तो धूप और नुकीली हो जाती है। पसीने से ड्रेस भीग जाती है। स्कूल टाइमिंग बदल गया है।

साढ़े सात बजे का स्कूल है। बस छह बजे से ही चक्कर काटना शुरू कर देती है। मम्मी पाँच बजे जगाती हैं। उसी समय नींद ज़्यादा आती है। सपने भी उसी समय घने होते हैं। मम्मी के जगाने की आवाज़ सपने में घुस आती है। उठने का मन नहीं करता। मम्मी जबरन उठाकर बिठा देती हैं। बोलती रहती हैं, "उठ जाओ। मुँह धो लो। बस अभी-अभी गई है। लौटने तक तैयार नहीं हुईं तो छूट जाएगी। जल्दी करो। देर हो रही है।"

मुँह धोने के बाद नींद तो साइड में हो जाती है। मगर क्लास में बहुत तंग करती है। अकसर चलती क्लास में झटका लगता है। मैम देख लें तो शामत आई समझो। इसीलिए हम आँखें खोलकर सोने की कोशिश करते हैं। पर कभी-कभी पलक झपक जाती है। मैम दहाड़ती हैं, "क्लास सोने की जगह नहीं है।" और होमवर्क देती रहती हैं - ये लिख लेना...ये याद कर लेना...ये पाठ तो पक्का पढ़कर आना...

तब मन करता है कह दूँ कि मैम क्लास सोने की जगह नहीं है तो घर भी पढ़ने की जगह नहीं है।



अनवर मियाँ की रोटी

दामोदर अग्रवाल
चित्रः तापोशी घोषाल



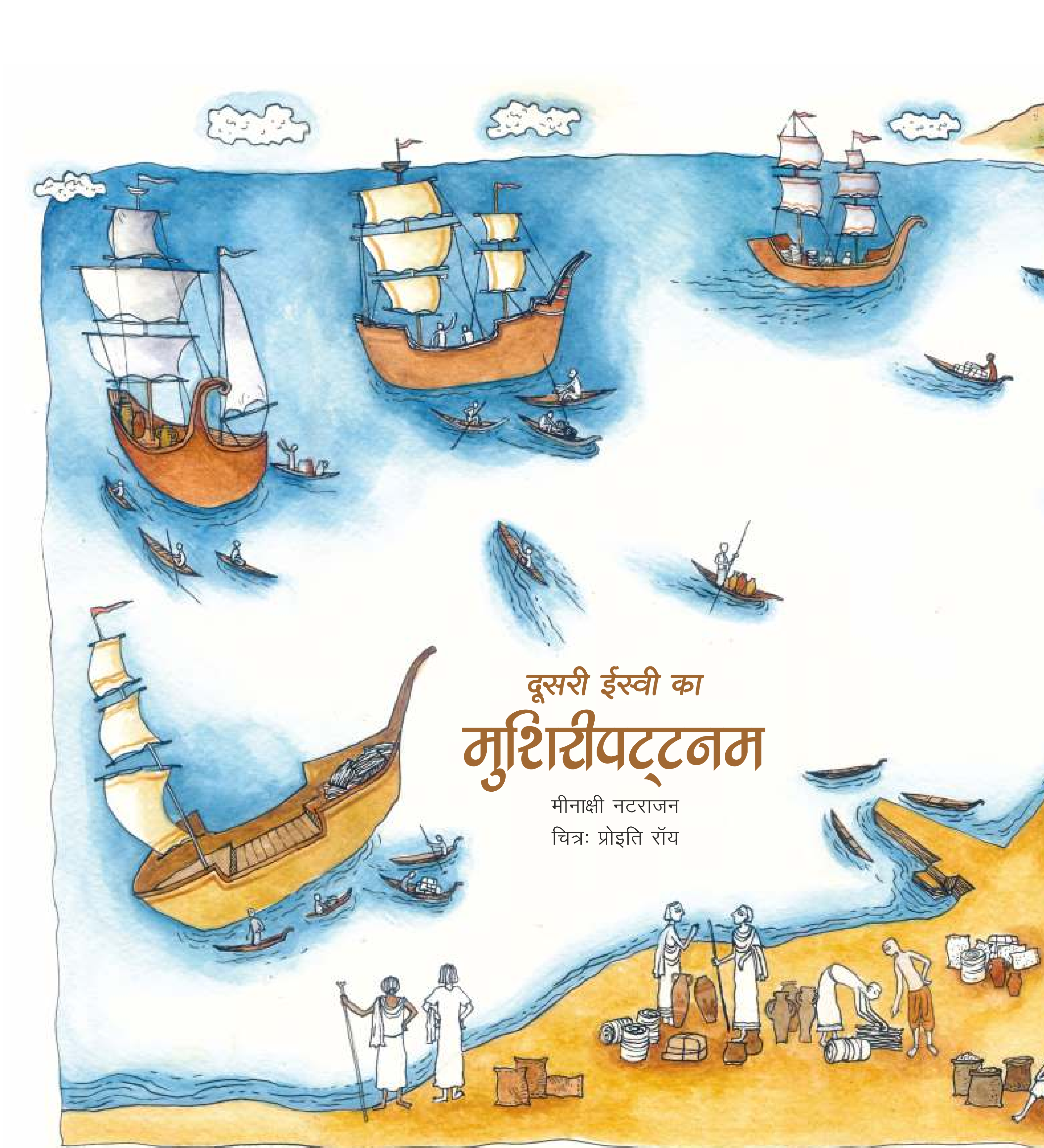
क्या चटपटी बनाई अनवर मियाँ की रोटी
हम सबने मिलके खाई अनवर मियाँ की रोटी
झोले में भरके आया गेहूँ का ताज़ा आटा
महमूद लाए आलू, रोमी ने उसको काटा
कूकर के घर से बढ़िया तूअर की दाल पकाई
जाके बाज़ार झट से ले आए हम मलाई
उपले में रख पकाई, अनवर मियाँ की रोटी
क्या चटपटी बनाई अनवर मियाँ की रोटी
हम सबने मिलके खाई अनवर मियाँ की रोटी।

अनवर मियाँ की रोटी बिकती है आने-आने
ले-ले के अपनी प्लेटें आते हैं लोग खाने
खाली पड़ी हैं देखो बाकी सभी दुकानें
रोटी खरीदने को मुझको भी भेजा माँ ने
क्या खूब है गदराई अनवर मियाँ की रोटी
क्या चटपटी बनाई अनवर मियाँ की रोटी
हम सबने मिलके खाई अनवर मियाँ की रोटी।



चुपड़ी है कैसी घी से अनवर मियाँ की रोटी
अच्छी लगे कढ़ी से अनवर मियाँ की रोटी
छोड़ी न जाए जी से अनवर मियाँ की रोटी
चाहो तो खाओ टी से अनवर मियाँ की रोटी
क्या चटपटी बनाई अनवर मियाँ की रोटी
हम सबने मिलके खाई अनवर मियाँ की रोटी।

अनवर मियाँ ने हमको रोटी बहुत खिलाई
खाने की उनकी लेकिन बारी जो अबके आई
कहने लगे खिलाओ अब मुझको रसमलाई
हैरां हो बोले दादा, खुद पका एक मिठाई
क्या चटपटी बनाई अनवर मियाँ की रोटी
हम सबने मिलके खाई अनवर मियाँ की रोटी।



दूसरी ईस्वी का

मुशिरीपट्टनम

मीनाक्षी नटराजन

चित्रः प्रोइति रॉय



वियना के राष्ट्रीय अभिलेखागार में 'मुज़ीरी पपाइरस' सुरक्षित रखा है। पपाइरस इसी नाम के पौधे के गूदे से तैयार कागज़ होता है। लिखने के लिए इसका इस्तेमाल मिस्र में पहली बार किया गया। मुज़ीरी पपाइरस में एलेक्ज़ेंड्रियाई वित्तीय प्रबन्धक और मुज़ीरी के व्यापारी के बीच एक कर्ज़ का करार है। मुज़ीरी (या मुशिरी) केरल के पट्टनम के आसपास का प्रसिद्ध बन्दरगाह रहा होगा। बताते हैं कि चौदहवीं सदी में आई बाढ़ में यह तबाह हो गया।

मुशिरीपट्टनम का उल्लेख तमिल संगम साहित्य में भी मिलता है। एक यूनानी व्यापारी के सफरनामे 'पेरिप्लस ऑफ इरैथिरीयन सी' में भी मुशिरी के काली मिर्च के व्यापार का उल्लेख है। तमिल ब्राह्मी में अरब (यमन या ओमान) में पहली ईस्वी के एक लेख में 'नानतै किरण' नाम मिला है। मिस्र के कुसैर अल-कादिम के बन्दरगाह के पास मिले दस्तावेज़ों में 'कन्नन', 'सातन' नाम मिले हैं। मिस्र के एक पपाइरस में पहली ईस्वी का एक पत्र मिला है। इसमें इंडिके नाम की औरत का पत्र है। वह एलेक्जेंड्रियाई व्यापारी की पत्नी या पुत्री रही होगी जो भारत में कुछ साल रही थी। मुशिरी में रोम के तत्कालीन राजा ऑगस्टस के मन्दिर का ज़िक्र भी उस वक्त के यात्रियों के दस्तावेज़ में मिलता है। पहली सदी के आसपास यहूदी केरल आकर बसने लगे थे। जैन, आजीविक, बौद्ध, सभी चेर-चोर-पांड्य राज्यों में रहते थे। यह संगम साहित्य से पता चलता है।

अलग-अलग समयों, जगहों पर लिखे, मिले, सहेजे गए इन दस्तावेज़ों से यह कहानी रची गई है। बाज़ारों, नगरों, पात्रों आदि के नाम भी इन्हीं दस्तावेज़ों से लिए हैं।

भोर होने से पहले ही मुशिरीपट्टनम के यवनमपाड़ी की एक कोठी में हलचल मच गई थी। यवनमपाड़ी एक बस्ती है। इसमें यूनान, मिस्र और उसके आसपास से आए लोग रहते थे। यवन व्यापारी साटियस की यह कोठी दूर से दिखाई देती थी। उसके पीछे कटहल, केले, नारियल आदि के पेड़ थे। सामने के बगीचे से मोगरे की महक आ रही थी। सेवक-कर्मचारियों की कुटिया बाईं ओर की दीवार से सटी थी। सेवक यात्रा की तैयारियों में लगे थे। कोई बैलों को चारा खिलाकर उन्हें सजा रहा था। कोई गाड़ी में लगे पायदान, लकड़ी की कुर्सीनुमा बैठक को रेशमी कपड़े से ढँक रहा था।

साटियस के निकलते तक सूरज चढ़ आया था। अपना दुशाला सम्भालते हुए वे बाहर खड़ी गाड़ी में झुककर घुसे। गाड़ी ऊपर से खुली थी। ऊँची कद-काठी के साटियस गाड़ी में सिकुड़कर बैठे। और सेवक को गाड़ी हाँकने का इशारा किया।

यवनमपाड़ी पीछे छूटती जा रही थी। पट्टनम के मुख्य रास्ते पर कई परिचित व्यापारी, लोग दिखाई देने लगे। साटियस के धूप में झुलसे चेहरे, सोने की बालियों, सुनहरे घुँघराले बालों, नीली आँखों को देख राहगीरों में कानाफूसी होने लगी।

"योन व्यापारी जा रहे हैं।" एक ने कहा।

"...म्लेच्छ कहीं के।" दूसरा हिकारत से बोला।

"क्या कहते हो? पिछले बीस बरस से तो मैं इन्हें देख रहा हूँ। हमारी ज़ुबान समझते हैं। टूटी-फूटी बोल भी लेते हैं। फिर भी उनको पराया मानते हो!"

साटियस की गाड़ी आगे बढ़ गई। सामने से व्यापारी शन्मुखम की गाड़ी आती दिखी। दोनों ने अपने-अपने गाड़ीवान को रुकने का इशारा किया।

"अरे शन्मुखम! कहाँ जा रहे हैं?" साटियस ने पूछा।

"सादियन! मैं तो रोज़ इस समय तक अपना सारा सामान लदवाकर घर लौट आता हूँ। आलंगाड़ी (शाम के बाज़ार) का व्यापारी हूँ। नालंगाड़ी (सुबह का बाज़ार) भरने से पहले लौट जाता हूँ। लेकिन आप कहाँ जा रहे हैं?"

साटियस मुस्कराए, "मैं बन्दरगाह की ओर कोठार भण्डारण का निरीक्षण करने जा रहा हूँ। अलसांधा से सन्देश आया है। बड़े सौदे का अनुबन्ध होना है। वहाँ से नानतै किरण के यहाँ जाऊँगा।"

"अच्छा, अच्छा। नानतै किरण तो आपके पुराने साझेदार हैं। कभी हम पर भी कृपा करें।" शन्मुखम ने हँसकर जोड़ा।

"क्यों नहीं! अच्छा इजाज़त दीजिए।" दोनों ने हाथ जोड़े और आगे बढ़ गए। साटियस सोचने लगे कि कितने बरस बीत गए मुशिरीपट्टनम आए। अब उन्हें सादियन बुलाया जाना अजीब नहीं लगता। यवनमपाड़ी के बहुत से व्यापारी साल दो साल रहकर अलसांधा या रोम लौट गए। उसके जैसे कुछ ही हैं जो यहीं के होकर रह गए। उनके पड़ोस की इंदिहै थिबियस की पूरी ज़िन्दगी यहीं बीती। वो अपने व्यापारी पति के साथ यहाँ आई थी। उसे अलसांधा कभी नहीं भूला। वो वहाँ से अनाज, रोटी, पेय मँगवाती रही और यहाँ की नायाब चीज़ें अपनी सहेली को भेजती रही।

साटियस अपने ख्यालों में थे कि सामने से श्रमणों की टोली आती दिखी। निर्वस्त्र। और वे देखते चल रहे थे कि किसी जीव पर उनका पैर न पड़ जाए। स्थानीय श्रेष्ठी उन्हें दान देते थे। वे पट्टनम में कई माह बिताते थे।

थोड़ा आगे बढ़े तो बन्दरगाह दिखाई दिया। वहाँ जहाज़ों पर सामान लादा-उतारा जा रहा था। नौकाएँ



रस्से से बँधी सुस्ता रही थीं। छोटी डुंगी, बड़े जहाज़, मछली श्रेणिकों के जहाज़, नमक ढोती नावें, मणियों के व्यापारियों की बड़ी-बड़ी नौकाएँ इधर-उधर सावधानी से बाँधी गई थीं। यवनों के देश से आई नौकाएँ खास थीं। सोने के सिक्कों से भरी। यहाँ के सामान का भुगतान उसी से होता था। यवनों की बस्ती के लोग अलसांधा से खाने की कई चीज़ें मँगवाते थे। मसालेदार चटनियाँ, ठण्डे पेय स्थानीय श्रेष्ठी वर्ग और राजा के मुख्य सरदारों की कमज़ोरी थी। कलात्मक चीज़ें कुलीन घरों की बैठकों में मिल जाती थीं। साटियस बन्दरगाह से थोड़ी दूर पर बने कोठार की ओर मुड़े। यहाँ जहाज़ पर चढ़ाने से पहले सामान कई सप्ताह तक रखा जाता था। मसाले, काली मिर्च, इलायची आसपास के जंगलों से आती थी। उन्हें पास की बड़ी नदी में छोटी नौकाओं पर लादा जाता। फिर पट्टनम में उतारा जाता। यहाँ से जहाज़ों से समुद्र पार भेजा जाता था।

बन्दरगाह के पास कई दुमंज़िला गोदाम थे। ऊपरी छज्जे तक जाने के लिए सीढ़ी थी। यहाँ सामान नमी से बचा रहता था। यवनों के भण्डार अलग थे। लेकिन सबमें स्थानीय व्यापारियों की साझेदारी थी।

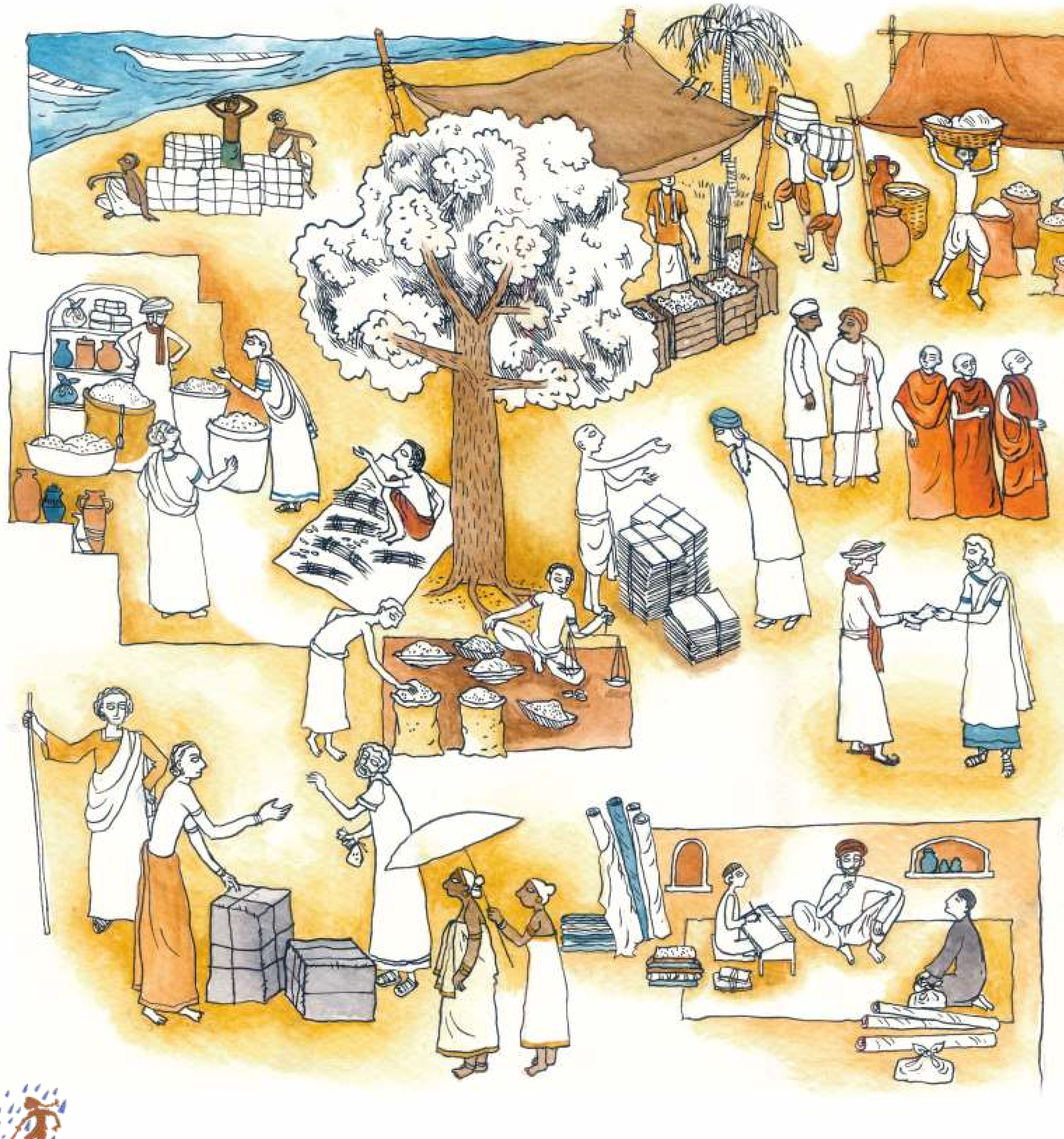
साटियस अपने भण्डार की ओर बढ़े। “सारा माल तैयार है? कल-परसों जहाज़ को रवाना करना पड़ेगा। नहीं तो मौसमी हवाओं का फायदा नहीं मिलेगा।” साटियस ने मुख्य भण्डारक से कहा। वह सिर हिलाते हुए बोला, “मैं समझता हूँ। गंगा तट से सुगन्धी, शंख, कछुए की छाल, पूर्व से चीन का रेशम और पूर्वी द्वीपों से मसाले पहुँच चुके हैं। श्रीलंका और सावकम (जावा) से भी माल आ गया है। कल से लदवाना शुरू कर दूँगा। मगर काली मिर्च आनी बाकी है। आप उनके निगम ज्येष्ठ नानतै के यहाँ जा ही रहे हैं। उनसे पता चल पाएगा कि देर कहाँ हो रही है।”

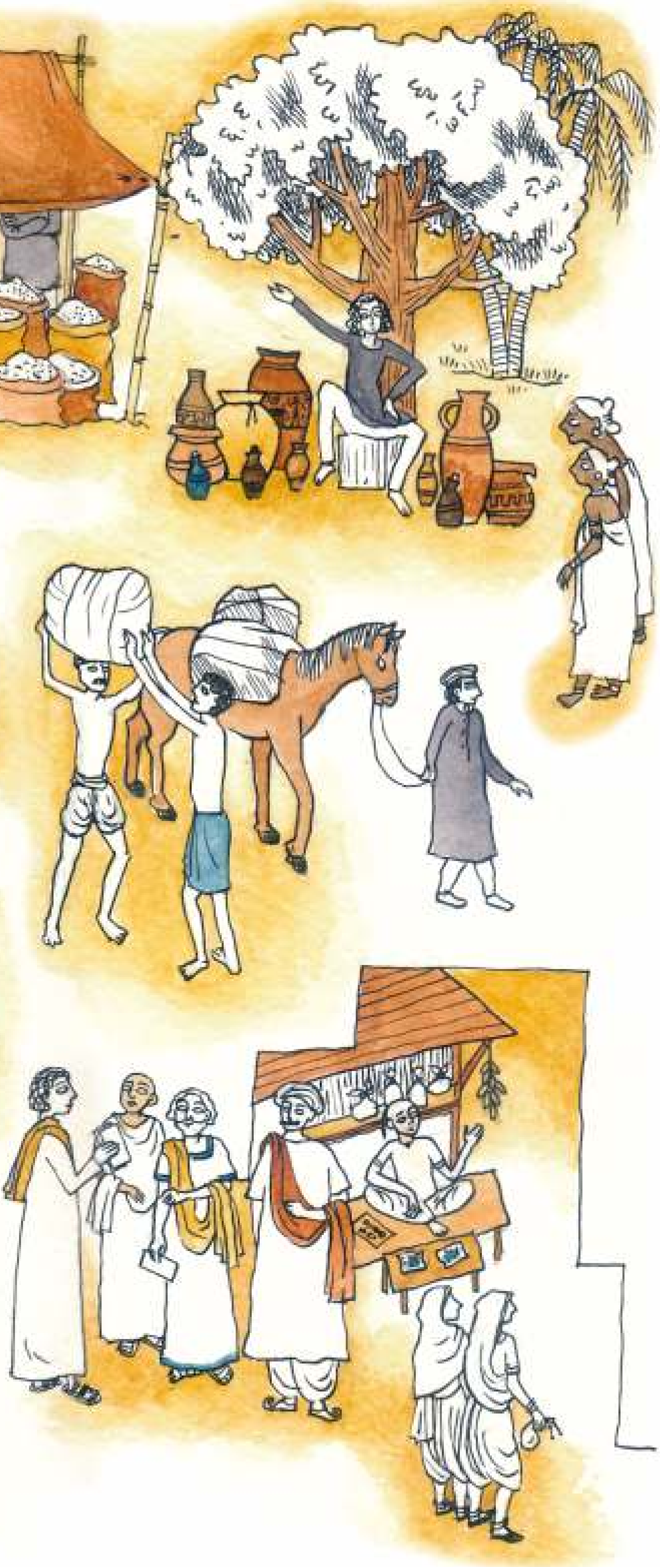
“बिना काली मिर्च के कुछ भी तैयारी नहीं हो सकती। वह तो काला सोना है। सारा व्यापार उसी के बल पर चलता है। मैं आज ही समझता हूँ।”

थोड़ी देर तक बाकी सामान का मुआयना कर साटियस गाड़ी की ओर चल दिए। बसाहट की ओर जाने का आदेश देकर साटियस गाड़ी पर चढ़ गए। धूप से आँखें चौंधिया रही थीं। उन्होंने हाथ से आड़ ले ली।

बाज़ार का दक्षिणी हिस्सा नज़र आने लगा था। यहाँ कई व्यापारिक निगमों की दुकानें और उससे सटे उनके छोटे कोठार थे। तेल और नमक व्यापारी, मछली बेचने वाले, लकड़ी के कारीगर, फूल-फल-सब्ज़ीवाले अपनी दुकानें सजाए थे। माला गूँथने वाले, पान-सुपारी वाले, इत्र वाले, शंख की चूड़ियाँ बनाने वाले, लुहार, ताड़ी बनाने वाले, गुमठी-ठेले वाले हाट लगाते थे। कुछ व्यापारी पहले मछुआरे होते थे। अब उनका व्यापार चल निकला था। दुकानें सजी थीं। खरीददार मोल-भाव कर सामान टटोल रहे थे। नगर के दक्षिणी हिस्से में कारोबार करते व्यापारी प्रतिष्ठित नहीं माने जाते थे। भले ही उनका व्यापार मुनाफे वाला हो। उनसे सम्बन्ध नहीं बनाए जाते थे। सूखी मछली की गन्ध नथुनों में समाने लगी तो साटियस ने दुशाला नाक पर लगा लिया।

गाड़ी आगे बढ़ी तो बड़े व्यापारियों की सजी-धजी दुकानों और खुशबुओं ने उनका स्वागत किया। आभूषण जड़ने वाले, सुनार, कपड़ा व्यापारी, रत्नों-मोतियों के सौदागर, सोने के व्यापारी, काँसे के मर्तबान बनाने वाले, हाथीदाँत, शंख, चीनी रेशम, औषधि, मसालों से सजे बाज़ार में रौनक थी। महिलाएँ-पुरुष वस्त्र, गहने देख रहे





थे। सिक्कों की माला का खास चलन था। अलसांधा से आए सुन्दर कलात्मक दृश्यों से रंगे लम्बे सुराहीदार घड़े भी बेचे-खरीदे जाते थे। हाथ में दीया लिए महिला की मूर्ति बहुत बिकती थी। जगह-जगह लोग झुण्ड में बातें कर रहे थे।

चीवरधारी की बात चल रही थी। “सुपारक नाम के नाव नियामक ने बताया है कि इस सागर से पार सागरों का लोक शुरू होता है। एक से छूटो तो दूजे में पहुँचो। अग्नि-सी धधकती जलधारा वाला सागर, फिर मोतियों जैसी बहती धारा, फिर दूध का सागर, कुशा घास-सा सागर आता है। यदि सुपारक बोधिसत्व न होते तो वो जहाज़ डूबना तय था। उनके कारण लुटेरे किसी को छू न सके।”

“लुटेरों की बात ठीक है। मगर दूध और अग्नि का सागर... थोड़ी कम फाँका करो।” सब हँसने लगे।

चीवरधारी ने मुँह बनाया, “यकीन न हो तो इस यवन से पूछो।”

“अरे! यह अब काहे का विदेशी व्यापारी है। इसकी दो पुश्तें तो यहीं पर हैं। सागर छोड़ो, इसने कभी पट्टनम तक को नहीं लाँघा है।” दूसरे ने कहा।

“लकड़ी की कारीगरी कर रोज़ी कमाता है। ये क्या जाने?”

“पर दिसई! यह तो बताओ कि तुम लोगों ने अगस्तु के मन्दिर को चन्दा दिया कि नहीं?”

“चन्दा नहीं दिया। लेकिन सूद पर कर्ज़ दिया। हम यहूदी तो अपनी पुश्तों की यादगीर बनाते हैं। वैसे यवन भी हमारे किसी उत्सव-आयोजन के लिए कोई दान नहीं देते।”

“ऐसा भी नहीं है। हमारे चैत्य को दिया है। मालप्रभा नदी के तीर पर जो बना था।” चीवरधारी ने कहा।

"पर चेर पेरुमाल वेंडर को ज़रूर देंगे।"

"क्यूँ न देंगे? बदले में इतना कुछ मिलता है। संरक्षण, व्यापार की इजाज़त, बसाहट।"

साटियस के कानों तक ये कुछ बातें पहुँचीं। तब तक नानतै का घर आ गया था। सेवक ने उन्हें आग्रह से बैठाया। भीतर नानतै अपनी पत्नी से बात कर रहे थे।

"देखो भामा! चिन्ता न करो। कन्नन का सन्देश आ गया है। वो सुरक्षित है। यहाँ से सामान जाते ही वो काम पूरा कर लौट आएगा।" भामा आश्वस्त न हुई। उनकी इकलौती बेटी का सवाल था। दामाद अलसांधा के किसी बन्दरगाह में था।

"लौटने का क्या भरोसा है? समुद्री जन्तु, लुटेरे, तेज़ लहरें।"

"थोड़े समय की बात है। वल्ली का ध्यान रखो। हुआ तो कल उसे बाज़ार घुमा लाना।"

इतने में सेविका खटखटाकर भीतर आई।

"मालिक! यवन वाणिक्यर आए हैं।"

"ओह! चलो आता हूँ।" नानतै बैठक की ओर चल दिए।

"आइए आइए, यवन वाणिक्यर। कैसे हैं?"

दोनों ने सम्मान में हाथ जोड़े। फिर बैठ गए। बड़े से थाल में फल, मिठाई परोसी गईं। चाँदी की प्याली में पेय भरा गया।

"वैसे तो सब ठीक है। मगर आपकी काली मिर्च की पेटियाँ पहुँचीं नहीं। जहाज़ रुका पड़ा है।" साटियस ने थोड़ा ज़ोर देकर कहा।

नानतै किरण उनके आने का कारण भाँप गए। "यवनर! कल तड़के नाव से पट्टनम तक सारा माल आ जाएगा। आश्वस्त रहिए।"

"ठीक है नानतै। अलसांधा से हमारे प्रमुख सौदागर ने अनुबन्ध भेजा है। आप देख लें तो करार पक्का हो।"

"ठीक है, अपने पास उसकी एक प्रतिलिपि तैयार करा लूँगा। वैसे आपके रहते यकीन न होने का कोई कारण नहीं।" नानतै ने भरोसा जताया।

"नानतै! सारे सामान का लाना-ले जाना हम दोनों की साझेदारी से होना है। सागर पार बन्दरगाह में सामान उतरेगा। फिर ऊँटों से रेगिस्तान से गुज़रकर कोप्टोस के गोदामों में जाएगा।" साटियस अपने कमरबन्द से दस्तावेज़ निकालकर पढ़ने लगे-

कुल माल का ब्यौरा यूँ हैः

गंगा किनारे से आई साठ पेटी सुगन्धी मूल्य पैंतालीस टैलेंट (स्वर्ण भार), तीन चौथाई हाथी दाँत, वज़न अठहत्तर टैलेंट, चौवन मिने, मूल्य छिहत्तर टैलेंट, साढ़े पाँच हज़ार द्राकमा (रोम की तत्कालीन करेन्सी) हाथी दाँत की छीलें मूल्य तेरह टैलेंट 9-3/4 मिने, काली मिर्च वज़न सत्रह हज़ार सात सौ चवालीस टैलेंट, उनसठ मिने, मूल्य सात सौ बहत्तर टैलेंट, पाँच हज़ार तीन सौ सतहत्तर द्राकमा। मसाला तीन हज़ार चार सौ उनतीस द्राकमा, कछुए का खोल चौबीस टैलेंट, तीन हज़ार आठ सौ अठहत्तर द्राकमा।

"हमारे जहाज़ हरमापोलोन में एक हज़ार एक सौ



चौवन टैलेंट, दो हज़ार आठ सौ बावन चाँदी द्राकमा बराबर माल लादा जाएगा। अनुबन्ध के मुताबिक नानतै, ऊँटवान को शुल्क हम देंगे। वहाँ से सौदागर डियस की मुहर लगवाकर जहाज़ पर सामान लादा जाएगा। इस बीच कोप्टोस के भण्डार गृह का शुल्क चुकाना, अलसांधा पहुँचाना, वहाँ एक चौथाई सीमा शुल्क देना हमारी ज़िम्मेदारी है। फिलहाल अलसांधा के मुख्य सौदागर से लिए कर्ज़ से यह सारा भुगतान हो रहा है। पर मुशिरीपट्टनम से सामान ले जाने के अनुबन्ध में तय मियाद तक चुकता न करने पर वे बिना सूचित किए सारा सामान बेच सकेंगे। केवल हमारे द्वारा किए गए खर्च का भुगतान करके बाकी मुनाफा उनका हो जाएगा।"

नानतै ने लम्बी साँस भरी। "तभी तो कन्नन को वहाँ भेजा है।"

साटियस ने उनके हाथ पर अपना हाथ रखा। "परेशान न हो। अब हिपला की खोज से पता लग ही गया है कि दक्षिण-पश्चिम बारिश को पहुँचाती हवाओं में यात्रा आसान हो जाती है। कन्नन चालीस दिन का सफर कर आ जाएगा।"

"फिर भी सामान पहुँचाने, सुपुर्द किए जाने, मौसम की अनुकूलता के लिए रुकते-रुकते साल हो ही जाएगा।" नानतै गम्भीर हो गए।

"कन्नन मेरे मित्रों की देखभाल में हैं। नानतै, चिन्ता छोड़िए। आपके दौर में ज़्यादा खतरे थे। फिर भी आप निडर रहे। सोने से भरी नाव लेकर जल्द आएगा।" साटियस की बात से नानतै सम्भले। साटियस ने विदा ली।



दो दिन बाद

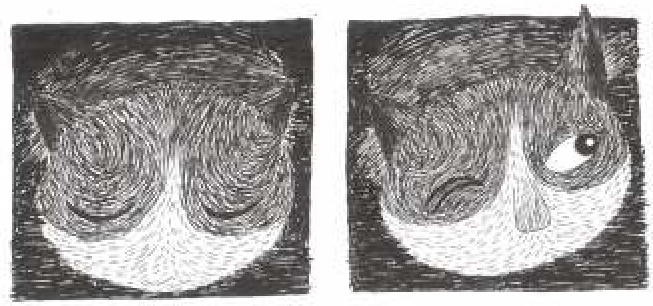
भामा और वल्ली सुबह-सुबह देवी मणिमेखलै की पूजा करने निकल गईं। वे समुद्र किनारे फूल, दीपक और नारियल का थाल सजाए खड़ी थीं। उनकी नाव में सामान लादा जा चुका था। वल्ली उदास थी। "पता नहीं कब तक इन्तज़ार करना होगा।"

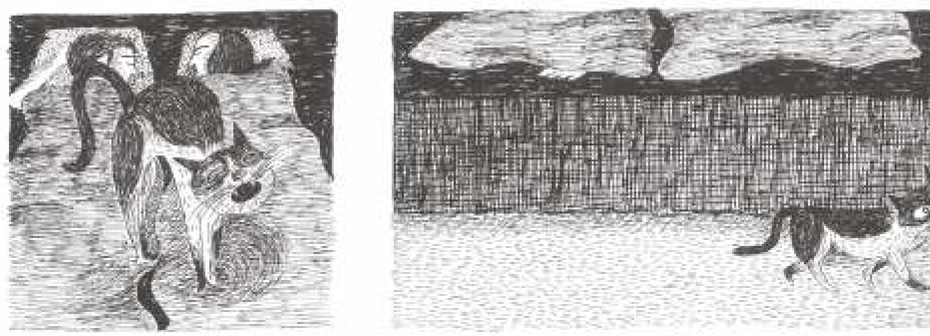
भामा ने वल्ली को थामा, "वल्ली। कल तुमने सुना नहीं भन्ते सरत क्या कह रहे थे! कैसे जब सुदास की पत्नी इन्तज़ार से थककर समुद्र में समाधि लेने जा रही थी, तब समुद्र को चीरकर निकली नाव में सुदास आता दिखाई दिया। विश्वास रखो। लौटती लहर के साथ कन्नन सकुशल आ जाएगा।"

वल्ली लहरों को देखती रही। उधर साटियस और नानतै किरण व्यस्त थे। जहाज़ को धकेलकर आगे बढ़ाया गया। पानी में हलचल थी। साटियस ने लहर को देखा। कुछ टकराकर वापस लौटीं। कुछ वहीं किनारे पर पसर गईं। जैसे उसी किनारे की होकर रह गई हों। उनकी ही तरह।

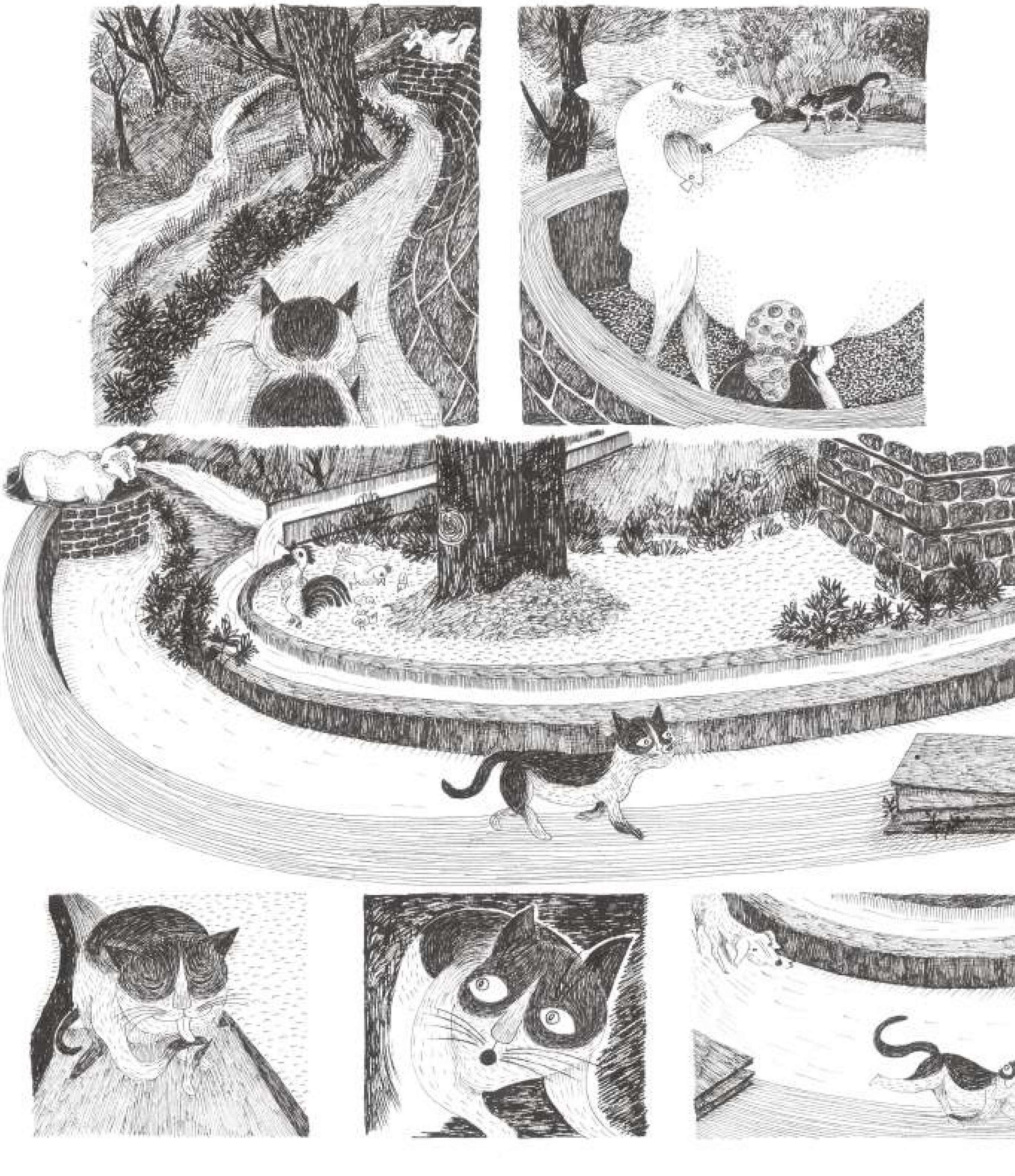
कैटवॉक

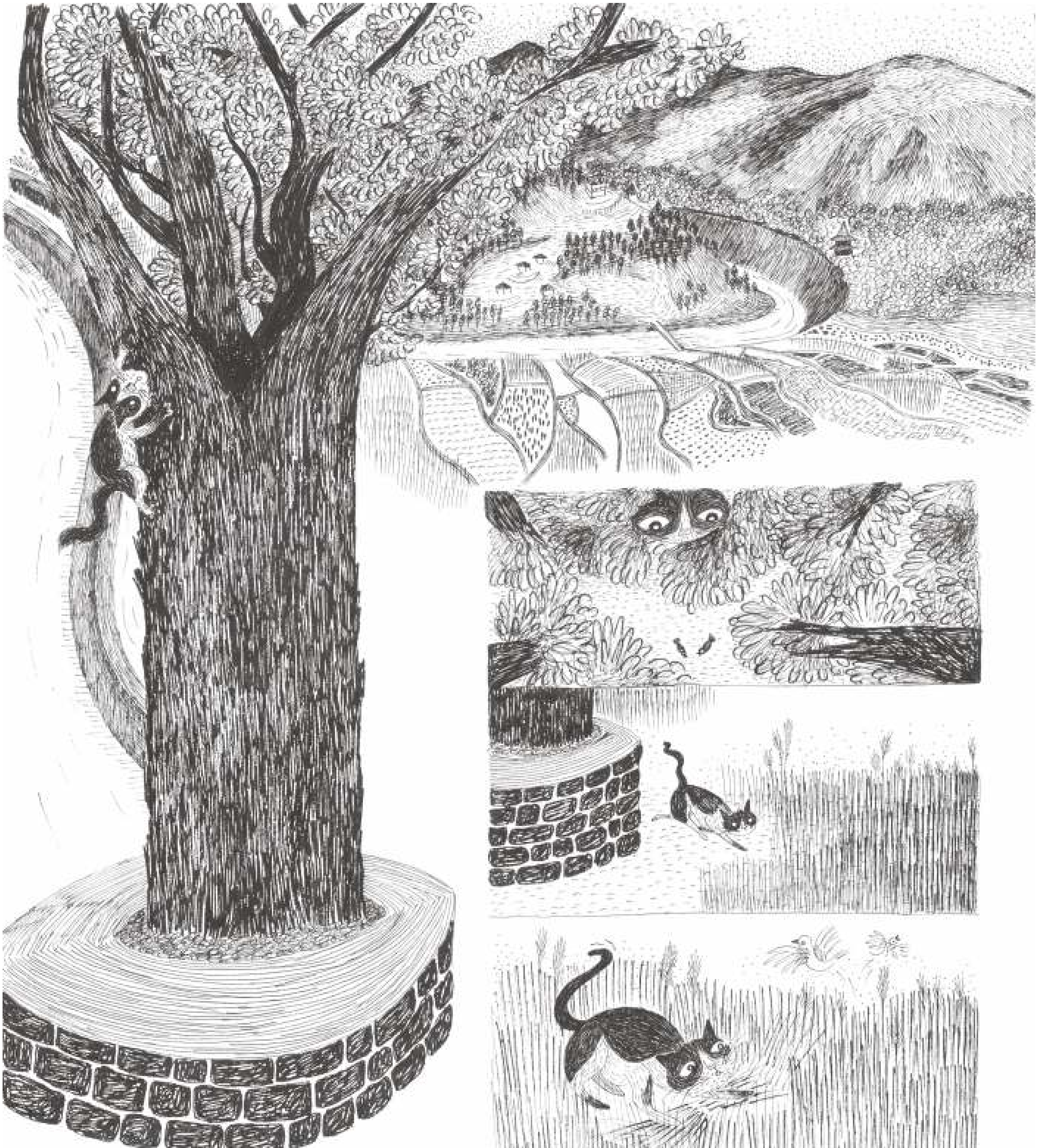
सानिका देशपाण्डे

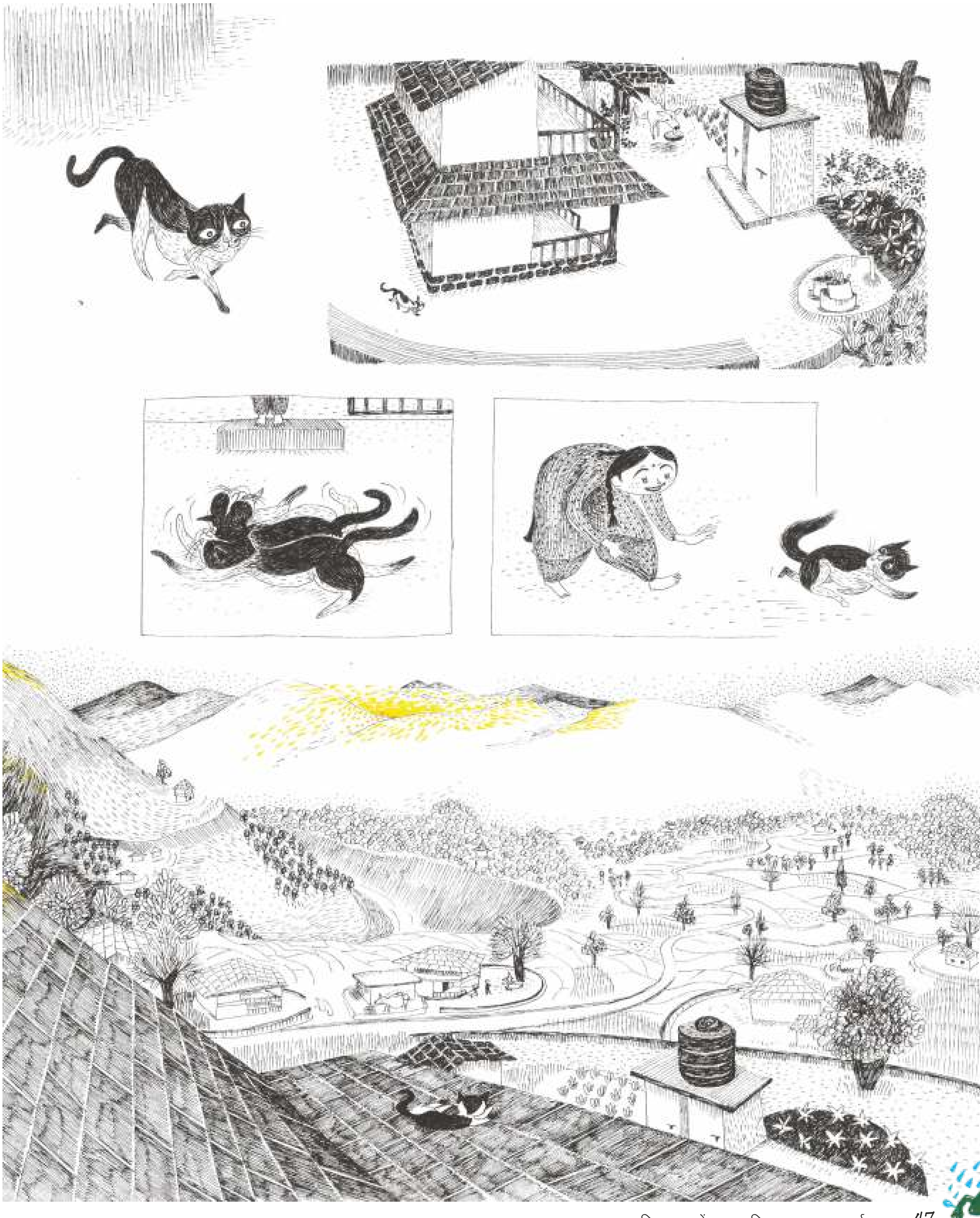


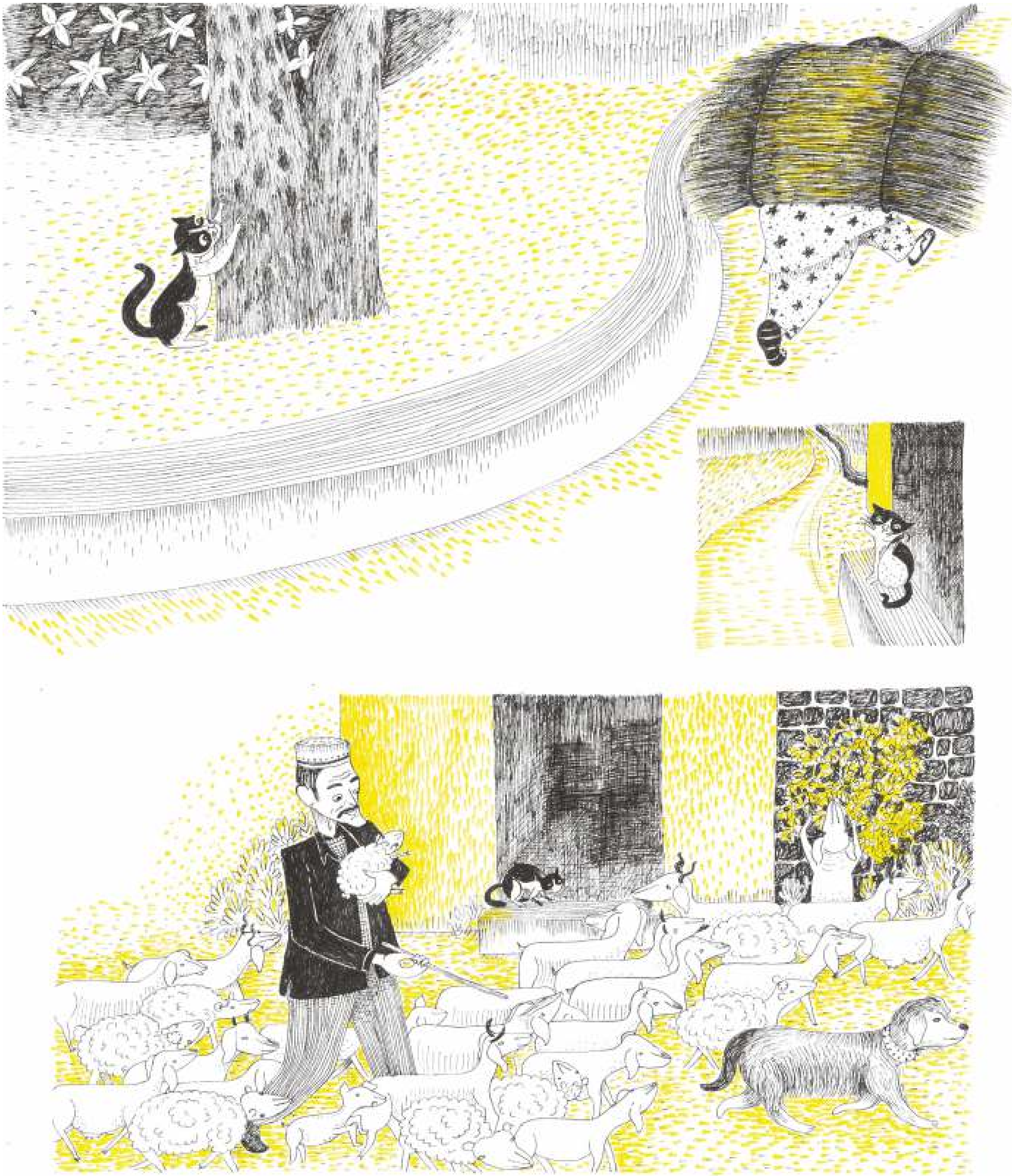


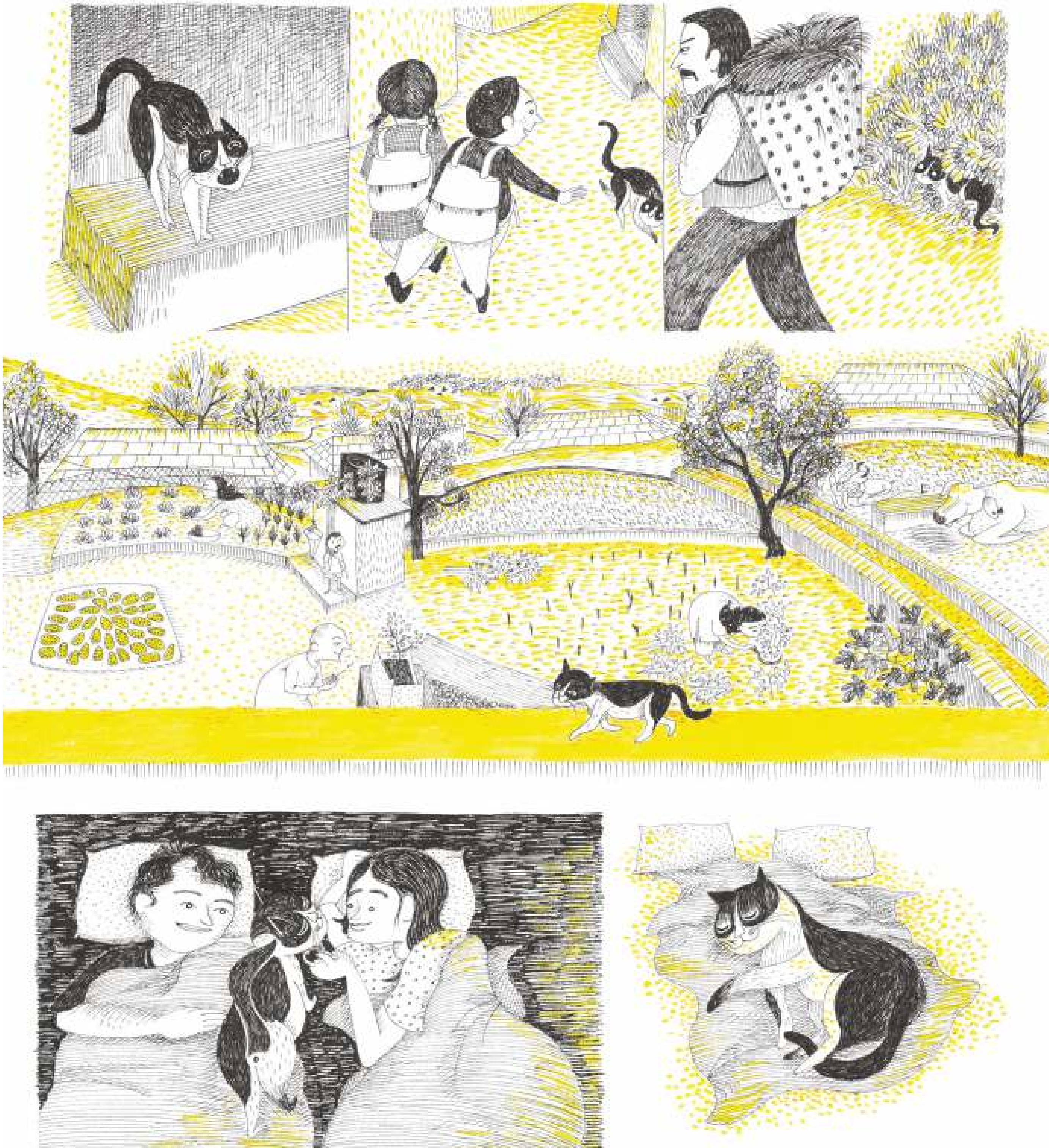












एक श्रंखला आग से प्यार करने वालों पर

आग लगी तो लाखों पाए

सोपान जोशी

चित्रः प्रोइति रॉय



जब जंगल में आग लगती है, तब सभी प्राणी जान बचा के उससे दूर भागते हैं। पर एक कीड़ा ऐसा है जिसे बीसियों किलोमीटर दूर से लपटों का पता लग जाता है। यह बीटल कमाल का उड़ाका है। सीधा आग के पास उड़ पहुँच जाता है, दमकल दल की तरह!

क्यों?

क्योंकि यह आग से ही निकलता है, और हर सूरत में आग को ही खोजता फिरता है।

कुदरत ने इसे करामाती औज़ार दिए हैं। दुनियाभर के कीड़ों की छह टाँगें होती हैं। इस बीटल की बीच की टाँगों के पास, सीने पर, एक नन्हा-सा अंग होता है। इसके भीतर ज़रा-सा पानी रहता है। उड़ते वक्त यह पूरी तरह खुल जाता है। इसी से यह बीटल गर्मी को भाँप लेता है। चूँकि यह अंग दोनों तरफ की टाँगों के नीचे होता है इसलिए गर्मी में बारीक अन्तर से उसकी दिशा को यह बूझ लेता है। कुछ वैसे ही जैसे हमारे दो कानों से पता लग जाता है कि कोई आवाज़ कहाँ से आ रही है।

जैसे हमारे कान ध्वनि की तरंगों को पकड़ लेते हैं और हमारी आँख प्रकाश की तरंगों को, वैसे ही इस बीटल की आँखें विशेष इन्द्रिय ऊष्मा की 'इन्फ्रारेड' तरंगों को ताड़ लेती हैं। यही नहीं, इसके 'इन्फ्रारेड सेंसर' उन्हीं तरंगों को पहचानते हैं जो जलते हुए जंगलों से निकलती हैं। जैसे पहले के ज़माने में रेडियो पर कोई कार्यक्रम सुनने के लिए किसी खास 'फ्रीक्वैंसी' से उसकी सूई मिलानी पड़ती थी।

इसके सूँघने की शक्ति भी असाधारण है। बहुत दूर से यह धुआँ सूँघ के जंगल की आग की टोह ले लेता है। कितनी दूर से? कुछ लोगों का अनुमान है कि सौ किलोमीटर दूर लगी जंगल की आग तक की खबर इसे हो जाती है। बहुत बड़े झुण्डों में यह उसी दिशा की ओर उड़ने लगता है।

आग से ऐसा राग क्यूँ?

इसका रहस्य इसके नाम में छिपा है। सादी अंग्रेज़ी में इसे 'फायर-चेज़िंग बीटल' कहते हैं। यानी आग का पीछा करने वाला बीटल। इसका वैज्ञानिक नाम है 'मेलानोफिला ऐक्यूमिनाटा'। पहले नाम का मतलब है 'काले रंग से प्यार' और दूसरे का 'तेज़ या कुशाग्र'। इसका रंग एकदम काला होता है। जले हुए जंगल की राख में यह गायब हो जाता है, दिखता ही नहीं। वहीं नर और मादा में मिलन होता है। पेड़ों के जले हुए तने में मादा अण्डे देती है। और वहीं से इसकी अगली पीढ़ी तैयार हो जाती है।

ये ऐसा क्यों करते हैं? वैज्ञानिक इसकी खोज कई सालों से कर रहे हैं। कुछ बातें पता चली हैं। पेड़-पौधों में कीट-पतंगों से बचने के लिए कई ताकतवर रसायन होते हैं जो इनके लिए ज़हरीले साबित होते हैं। जले हुए पेड़ में ऐसे ज़हर बचते ही नहीं। पर वनस्पति के कई रस आग के बावजूद बच जाते हैं जिनमें यह बीटल अपना भोजन पाता है। इन्हीं की वजह से उसके अण्डों को भी पोषण मिलता है। इतने सारे भोजन की वजह से इस बीटल की संख्या में तेज़ी से बढ़ोतरी होती है।

जले जंगल में इसे सुरक्षा भी मिलती है और स्वतंत्रता भी। कोई दूसरा कीड़ा ऐसी कठिन जगह अण्डा नहीं देता। इसलिए जब इस बीटल के अण्डों से इल्लियाँ निकलती हैं, तब उन्हें दूसरी प्रजातियों के डिम्भों से प्रतियोगिता नहीं करनी पड़ती। और भी फायदे हैं। जले हुए जंगल से वे सभी प्राणी भाग जाते हैं जो कीड़ों का शिकार करते हैं या उनके अण्डों और इल्लियों को खा

जाते हैं। अगर इस कठिन इलाके में कोई शिकारी आ भी जाए तो इस बीटल का रंग एकदम जली हुई लकड़ी के समान होता है। जले हुए जंगल में इस बीटल का मंगल ही मंगल होता जाता है।

कीट प्रौद्योगिकी के अद्‌भुत रहस्य

जीव-वैज्ञानिक कई सालों से इस बीटल पर शोध कर रहे हैं। उन्हें धीरे-धीरे इसकी ज्ञान-इन्द्रिय शक्ति का पता चला। इसकी वजह से कई गुत्थियाँ सुलझ रही हैं - और नयी पहेलियाँ भी उभर के आ रही हैं। इस बीटल के इन्फ्रारेड सेंसर केवल नीचे की तरफ या बगल की ओर काम करते हैं। ऊपर से आती हुई गर्मी को यह नहीं पकड़ पाता।

यही नहीं, इसके सेंसर जंगल की आग और दूसरी आग में भेद नहीं कर पाते। 1940 के दशक में अमरीका के कैलिफोर्निया राज्य में स्टेडियम में बैठे लोगों ने इसका नतीजा झेला है। वहाँ बैठे इतने सारे लोग सिगरेट पीते थे कि इस बीटल के झुण्ड उसे जंगल की आग मान के वहाँ पहुँच जाते। इसकी काटने की शक्ति ऐसी जबर है कि उन्हें सिगरेट पीने का एक नुकसान वहीं भुगतना पड़ जाता।

उस समय यह पता नहीं था कि इतनी संख्या में यह बीटल स्टेडियम ही क्यों पहुँच जाते हैं। पर इतना अन्दाज़ा ज़रूर था कि ये सौ-सवा-सौ किलोमीटर दूर से धुएँ का पीछा करते हुए आ गए थे। कई जगहों पर यह देखने में आया कि यह बीटल बीसियों किलोमीटर दूर की आग पकड़ लेता है। इसी तरह सन 1924 में पेट्रोलियम के कुओं में आग लग गई। बड़ी संख्या में यह बीटल वहाँ भी पहुँच गया। पर इसे वहाँ निराशा ही हाथ लगी होगी!

इसके इन्फ्रारेड सेंसर जैसा उपकरण आज तक इंसान बना नहीं पाया है। वायु सेनाओं में शत्रुओं के विमान को ताड़ने के लिए कई रेडार और गर्मी भाँपने वाले इन्फ्रारेड यंत्र बनाए गए हैं। किसी एक में भी इतने बढ़िया सेंसर नहीं हैं। माना जाता है कि अन्तरिक्ष की खोज करने वाली बहुत महँगी रेडियो दूरबीनों से ही इस बीटल के सेंसर की तुलना हो सकती है। वे दूरबीनें किसी बड़ी इमारत के आकार की होती हैं। और आग का पीछा करने वाला यह बीटल केवल आधे इंच का!

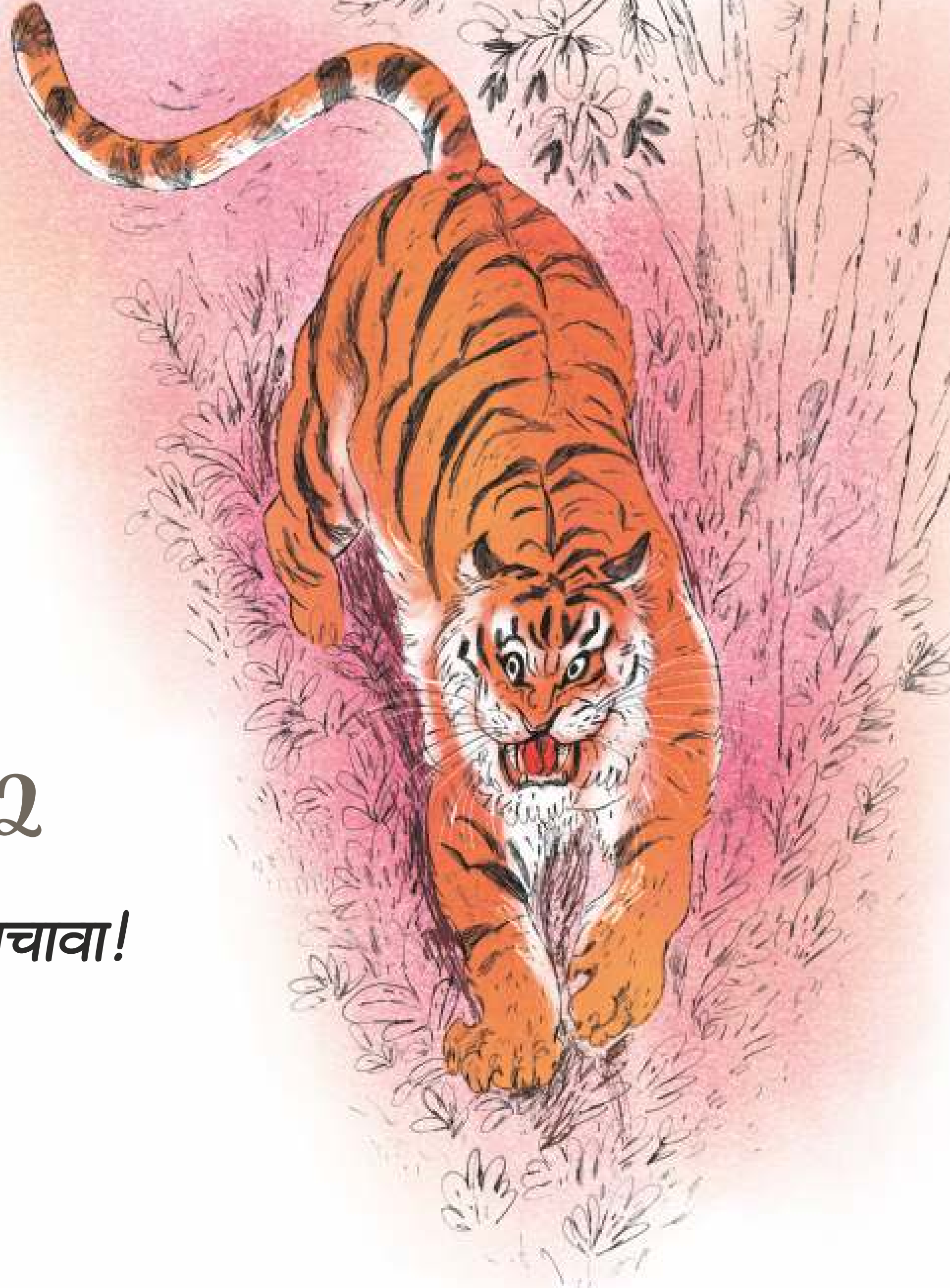


हाथी की सूँड़

हाथियों की सूँड़ में तीस हज़ार से ज़्यादा मांसपेशियाँ होती हैं। इन्हीं के दम पर वो भारी-भरकम पेड़ों को जड़ से उखाड़ सकते हैं। और इन्हीं तीस हज़ार मांसपेशियों की बदौलत किसी पके हुए फल को बिना पिचकाए तोड़ पाते हैं।

चित्रः तापोशी घोषाल

मेरे बचपन के बाघ - 2



खै दिन्या छ! बचावा! बचावा!

देवेन्द्र मेवाड़ी
चित्रः पंकज सैकिया

यह किस्सा स्याला के जंगल का है।

उन दिनों वहाँ एक बाघ का आतंक छाया हुआ था। वह आदमखोर बाघ था। आमतौर पर बाघ आदमियों पर हमला नहीं करता। लेकिन बूढ़ा हो जाने, पंजे घायल हो जाने या दाँत टूट जाने पर वह आदमी पर हमला करने लगता है। स्याला के जंगल के बाघ के साथ भी शायद ऐसा ही कुछ हुआ हो।

स्याला के जंगल में मवेशी चराने वाले ग्वालों और घसियारिनों को बहुत सम्भल कर रहना पड़ता था। ऊपर के नैथन, ककोड़ और दूसरे गाँवों से नीचे चोरगलिया बाज़ार आने-जाने वालों को बहुत ध्यान रखना पड़ता था। क्या पता आदमखोर बाघ जंगल के रास्ते में खम्म से सामने आ जाए!

जंगलात विभाग बाघ को ज़िन्दा पकड़ना चाहता था। पिंजरे में बकरी बँधी रहती पर वह उसके

आसपास तक नहीं फटकता था। तब सोचा गया- क्या पता वह आदमी का ही कोमल मांस खाना चाहता हो? या उसके दाँत अब आदमी का मांस चबाने लायक ही रह गए हों? कौन जाने...

तब तय किया गया कि दो हिस्सेवाला पिंजरा लाया जाए। बीच में सरियों की मज़बूत दीवार हो। इसे फाटक की तरह ऊपर उठाया जा सके। पिंजरे के भीतरी हिस्से में कोई मज़बूत दिलवाला बैठा हो। और आगेवाला खाली हो। बाघ के पिंजरे में आते ही अन्दर बैठा आदमी सरिये वाले फाटक को झट से गिरा दे। इस तरह बाघ पिंजरे के एक हिस्से में कैद हो जाएगा और आदमी दूसरे में।

यह सब तो ठीक था। पर ऐसा हिम्मती आदमी कहाँ से आए जो रात में पिंजरे में बैठ जाए?

खोज शुरू हुई। आसपास पता किया गया। वहाँ से कुछ दूर जंगल में कुछ मज़दूर सड़क का काम कर रहे थे। उनमें कुछ बेहद गरीब नेपाली भी थे। पिंजरे में बैठने का काम बहुत बहादुरी के साथ-साथ खतरे का भी काम था। रात के अँधेरे में बियाबान जंगल में पिंजरे में बैठने की हिम्मत जुटाना आसान नहीं था। हालाँकि इस काम के अच्छे-खासे पैसे मिलने थे। यह काम खुलेआम बता कर भी नहीं किया जा सकता था। इसलिए चुपचाप किसी हिम्मती आदमी की तलाश शुरू हुई।

बात जब उन मज़दूरों तक पहुँची तो उनमें से एक ने सामने आकर कहा, "मु बैठन्या छ पिंजरा में हुज़ुर।"

"बाघ से डरोगे तो नहीं?"

"नैं हुज़ुर मु त नैं डरन्या छ। बाघ थैं ले पुछि लेना हुज़ुर!" हँस कर मज़दूर ने कहा।

बात तय हो गई। मज़दूर को उसका काम समझा दिया गया कि उसे पिंजरे के अपने कमरे में बैठकर रातभर कुछ न कुछ बोलते रहना होगा। वह ज़ोर-ज़ोर से गा भी सकता है ताकि आदमखोर बाघ आदमी की तलाश में वहाँ आ जाए। पिंजरे का फाटक खुला रहेगा। ज़्यों ही बाघ उसकी आवाज़ सुनकर पिंजरे में आएगा, उसे झटके से सरियों वाला फाटक गिरा देना है। फाटक दीवार बन जाएगा और बाघ पिंजरे के दूसरे कमरे में कैद हो जाएगा। "समझ गए जंगबहादुर?"

"समझ गया हुज़ुर।" उसने कहा।

शाम को उस पिंजरे में जंगबहादुर को बैठा कर



लोग लौट आए। रात घिरने के बाद जंगबहादुर बीच-बीच में आंय-बांय कुछ भी बोलता रहा। कभी कोई नेपाली गीत गा देता-

ध्वै दिन्या कोई छइ ना
परदेशई मा मरी जौंलो
ध्वै दिन्या कोई छइ ना

तभी आधी रात में एक दिल दहला देने वाली दहाड़ से वह थर्रा गया। बाघ उसकी आवाज़ सुनकर पिंजरे में घुस गया। जंगबहादुर ने फाटक गिरा दिया। बाघ ने जंगबहादुर की ओर देख एक भरपूर पंजा मारा लेकिन पंजा बीच के सरियों से टकरा गया। जंगबहादुर दूसरी तरफ था।

दहाड़ सुनकर जंगबहादुर के होश उड़ गए। सरियों के बीच से बाघ की आँखों से अंगारे उगल रहे थे। वह गुस्से से फिर दहाड़ा!

बाघ दहाड़ता रहा। फिर थककर चुप हो गया। सुबह लोग हाल जानने के लिए पिंजरे के पास पहुँचे। जंगबहादुर बेहोश पड़ा था। थोड़ी देर में उसे होश आया। वह थकी आवाज़ में बड़बड़ाया- खै दिन्या छ। बचा...वा...और फिर बेहोश हो गया।

जंगलात के लोगों ने उसे ज़ोर से आवाज़ दी तो बगल में थका-हारा पड़ा बाघ दहाड़ा!

जंगबहादुर भी थरथरा गया। बचाने आए लोगों को देख कुछ जान में जान आई। उसने हाथ जोड़ कर कहा, “बचावा! खै दिन्या छ!” और सरियों के पार बाघ को देख फिर बेहोश हो गया।

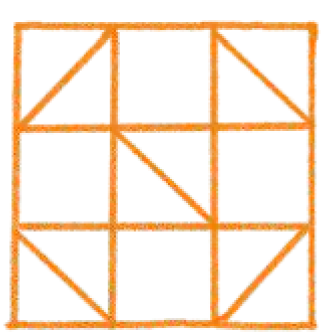
जंगलात के कर्मचारियों ने बाघ को जाल में पकड़ लिया। बेहोश जंगबहादुर को अस्पताल ले जाया गया। रास्ते भर जब-जब उसकी बेहोशी टूटती, वह थकी हुई कमज़ोर आवाज़ में चिल्ला पड़ता, “खै दिन्या छ! बचावा! बचावा!”

अस्पताल से ठीक होकर जंगबहादुर लौट आया। अब वो लोगों को बाघ के पिंजरे में बैठने की अपनी बहादुरी का किस्सा सुनाता रहता है।

माथापच्ची

1 123456789

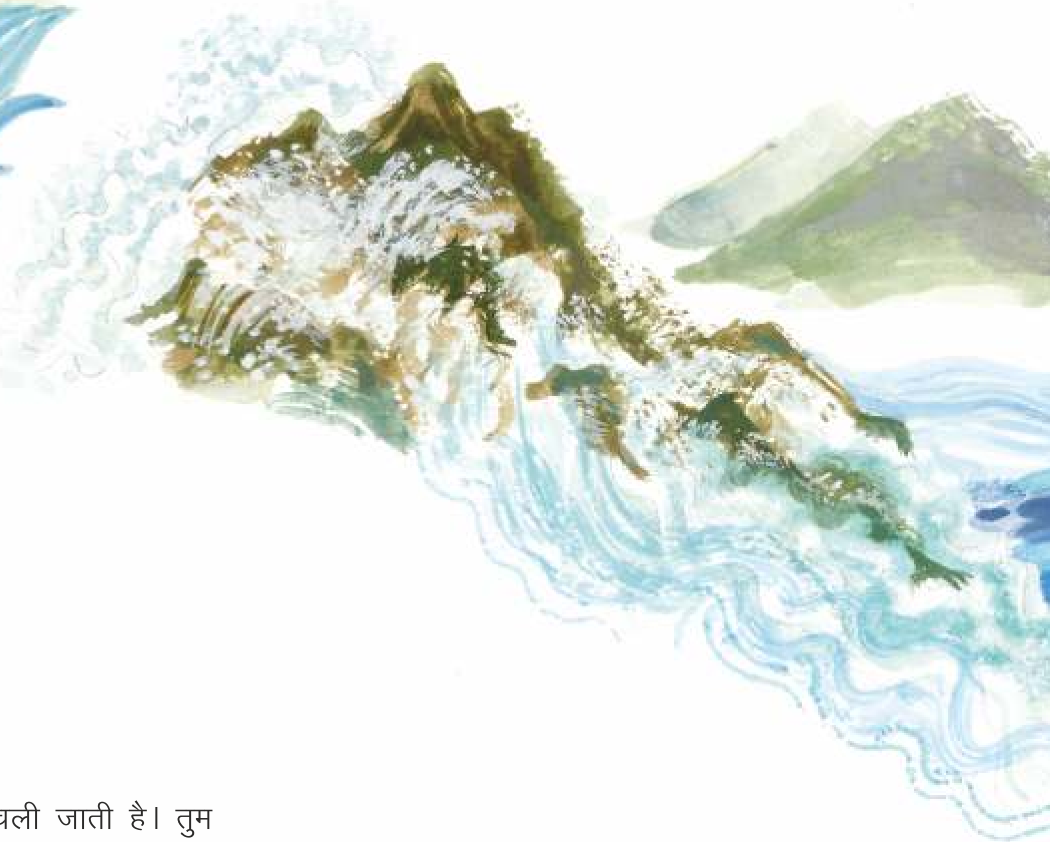
इन अंकों के बीच में + और − इस तरह से लगाओ कि इसका जोड़ 100 आए।



2 ***क्या इस ग्रिड को बिना पेंसिल उठाए और किसी लाइन पर बिना दोबारा जाए बना सकते हो?***

1. ऐसे कि 123-4-5-6-7+8-9, 123-45-67+89





नदी

उदयन वाजपेयी
चित्रः तापोशी घोषाल

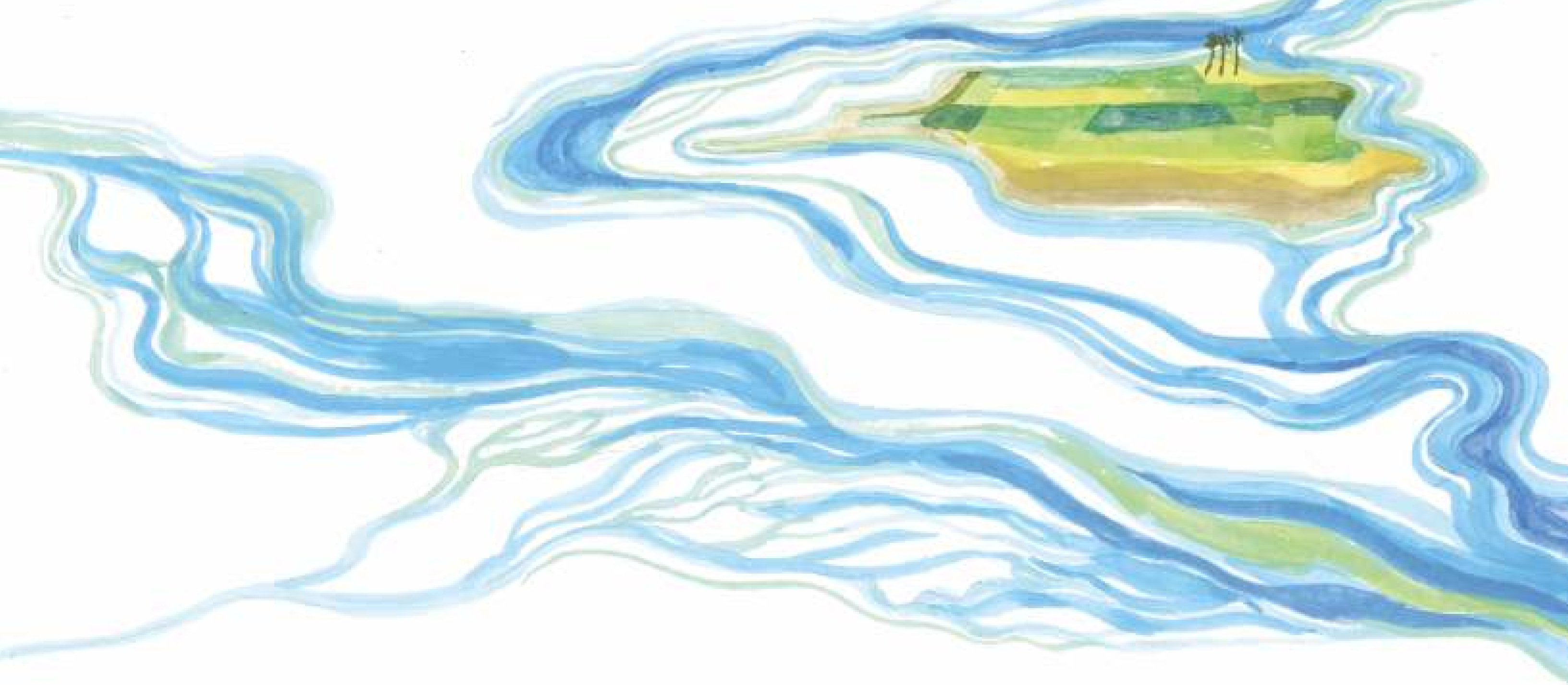
वह बहती है और बहती ही चली जाती है। तुम जितनी बार उसमें पाँव रखते हो, हर बार तुम्हारा पाँव उसके नये पानी से टकराता है। पुराना पानी तब तक कहीं दूर जा चुका होता है। जब भी आकाश उसके बहते साफ पानी में नदी की गहरायी की टोह लेने, उसमें झाँकता है, उसे उस बहते पानी में अपनी ही तस्वीर दिखायी देती है। इस तरह देखो तो नदी में पानी तो बहता ही है, साथ में आकाश भी बहता हुआ महसूस होता है।

वह जिस जगह से भी बहती है, उसी तरह की आवाज़ उसके बहने से होती है। मैदानों पर धीमे-धीमे बहती नदी लगभग चुपचाप बहती है। वह जैसे सबसे छिपकर भीतर ही भीतर बहती रहती है। ऊपर से देखने पर तुम्हें लगेगा कि वह ठहर गयी है। इससे थोड़ी-सी तेज़ बहती नदी का पानी ‘कल-कल’ की सुन्दर आवाज़ करता है। उसे सुनकर तुम समझ सकते हो कि नदी न धीमे बह रही है, न तेज़। वह कुछ ऐसे बह रही है जैसे कोई धीमे से गाना गुनगुना रहा हो। पहाड़ी इलाकों से बहती नदी तेज़ आवाज़ करती है। उसका बहता पानी पहाड़ी चट्टानों से टकराता है और इस टकराहट की आवाज़ होती है। जब वह पानी दूसरी चट्टान से टकराता है, एक दूसरी आवाज़ होती है। वही पानी जब किसी और चट्टान से टकराता है, तीसरी तरह की आवाज़ होती है। चूँकि नदी का पानी तीन या चार या पाँच चट्टानों से एक साथ टकराता है, तीन या चार या पाँच तरह की आवाज़ें एक साथ होती हैं और तुम्हें एक मिली-जुली आवाज़ सुनायी देती है जिसमें नदी के पानी का तीन या चार या पाँच चट्टानों से टकराना होता है। ये सारी आवाज़ें आपस में रस्सी की तरह गुँथ कर तुम तक पहुँचती रहती हैं और तुम आँख बन्द कर भी समझ जाते हो कि नदी पहाड़ी रास्ते से उछलते हुए



नीचे उतर रही है। पहाड़ी नदी का पानी इतनी ज़्यादा चट्टानों से टकराकर बहता है कि उसमें ढेर सारे बुलबुले उठ आते हैं। उन बुलबुलों पर भी आसमान की छाया उतर आती है। इस कारण महसूस होता है कि मानो नदी का पानी सफेद हो गया हो। इसे ही दूध की नदी कहा जाता है।

नदी का पानी अपने भीतर बहुत सारी छोटी-बड़ी मछलियाँ, कछुए, कभी-कभी मगरमच्छ और ढेरों पानी में रहने वाले जीवों को साथ लेकर चलता है। हर नदी के भीतर एक अलग ही संसार बना रहता है जिसमें तमाम जीव चल कर नहीं, तैर कर एक-दूसरे के पास जाते हैं। कुछ मछलियाँ नदी के बहाव के साथ चलती हैं। ऐसी भी कुछ मछलियाँ होती हैं जो नदी के बहाव से उलटा तैरती हैं। वे बहादुर मछलियाँ शायद वहाँ जाने की कोशिश करती हैं जहाँ से नदी की शुरुआत हुई हो। यह कहना ठीक नहीं है कि नदी किसी एक ही जगह से शुरू होती है। इतना भर कहा जा सकता है कि नदी की एक शुरुआत एक खास जगह से होती है। जैसे गंगा गंगोत्री से शुरू होती है, और नर्मदा अमरकंटक से। लेकिन नदी के बहाव के पूरे रास्ते में जगह-जगह कई सोते रहते हैं जिनसे नदी में पानी आता रहता है। यानी हम यह कह सकते



हैं कि नदी एक जगह से शुरू होने के बाद भी जगह-जगह से शुरू होती रहती है। वह लगातार शुरू होती रहती है। साथ ही कई छोटी नदियाँ और नाले भी आकर बहुत-सा पानी बड़ी नदी में डालते जाते हैं।

नदी लगातार बनती रहती है। वह बनती है, और बहती है। बहती है और बनती है।

मैं एक ऐसी नदी से मिला हूँ जो दोनों तरफ बहती थी। बरसों पहले मैं नॉन्त नाम के शहर में रह रहा था। यह शहर फ्रांस में है। मैं नदी के बिलकुल पास रहता था। उस नदी का नाम था, लोआर।

लोआर नदी का पानी आमतौर पर समुद्र की ओर बहता था। पर कभी-कभी वह समुद्र की ओर से दूसरी तरफ भी बहने लगता था। यह देखकर मुझे पहले बहुत आश्चर्य होता था। मैं रोज़ लोआर के किनारे खड़ा होकर यह देखने की कोशिश करता कि आज नदी किस ओर बह रही है। वह समुद्र की ओर जा रही है या समुद्र से आ रही है? कुछ दिनों बाद एक आदमी ने मुझे बताया कि जब समुद्र में भाटा होता है, यानी जब समुद्र के पानी का स्तर नीचे रहता है, लोआर नदी उसकी ओर बहने लगती है। लेकिन जब समुद्र का पानी फूलने को आता है यानी जब उसमें ज्वार आता है, लोआर समुद्र से दूर बहने लगती है।

समुद्र के पास पहुँची नदियों में ऐसा ही होता है। वे दोनों ओर बहती हैं। वे जिस रास्ते से जाती हैं,





उसी रास्ते से कभी-कभी वापस भी आ जाती हैं। अगर कोई तुम्हारे हाथ या पाँव की चमड़ी पर अंगुली फेरे तो तुम्हें गुदगुदी होने लगेगी। क्या पृथ्वी की सतह पर सरकती नदियों से पृथ्वी को गुदगुदी नहीं होती होगी? कौन जाने! या शायद इसीलिए लगभग सारी नदियाँ पृथ्वी पर अपनी जगह धीरे-धीरे बदलती रहती हैं। जब पृथ्वी को नदियों से होती गुदगुदी कुछ ज़्यादा ही महसूस होने लगती है, वह नदियों को थोड़ा-सा सरका देती है। यही तो तुम भी गुदगुदाने वाली अंगुली के साथ करते हो। भारत में पृथ्वी को सबसे ज़्यादा गुदगुदी कोसी नदी से होती होगी। तभी तो उसके बहने की जगह को पृथ्वी कई बार बदल चुकी है।

मुझे नदियों को देखकर यह लगता है कि ये नदियाँ जीवन की तरह ही हैं – लगातार बहती हैं, बहती ही चली जाती हैं पर कभी खत्म नहीं होतीं। हमेशा नयी बनी रहती हैं।





आषाढ़ का पहला दिन

मृणालिनी बनारसे
चित्रः भार्गव कुलकर्णी

आज से लगभग डेढ़ हज़ार साल पहले की बात है। आषाढ़ माह के पहले दिन एक आदमी ने पहाड़ की चोटी पर एक बादल देखा। वह कृष्णमेघ था। यानी पानी से भरा एक काला बादल। दक्षिण-पश्चिमी दिशा से आया वो बादल पहाड़ की चोटी पर थोड़ा झुका हुआ था। एक कवि ने उसे देखा और देखते ही एक कविता कही। इस कविता का अर्थ कुछ यूँ लगाया जा सकता है - कि आषाढ़ के पहले दिन की बात है। बादल पहाड़ी पर घिर आए हैं। मानो कोई हाथी बच्चों समान मौजमस्ती पर उतर आया है।

जाती गर्मियों के इस वाकए से कवि कालिदास का मन झनझना गया। इसी आनन्द, सुख, सुन्दरता में खोए कवि से एक काव्य रच गया। मेघदूत नाम के इस काव्य में एक यक्ष है। उसके पास कई तिलिस्म हैं। यक्ष एक गलती की सज़ा भुगत रहा है। एक साल के लिए उसे अपने शहर से दूर रहना है। उसकी पत्नी हिमालय की तलहटी में स्थित अलकानगरी में है। और यक्ष उससे बहुत दूर रामगिरि पर्वत पर है।

बारिशों का मौसम है। यक्ष को अपनी पत्नी की बहुत याद आ रही है। लेकिन वह उसे अपना सन्देश कैसे भिजवाए? तभी वह इस कृष्णमेघ को देखता है और उसके सामने अपना दिल खोल देता है। यक्ष बादल से कहता है कि वो उसकी पत्नी के नगर जाकर उसका सन्देश पहुँचा दे। मेघदूत इसी सन्देश की कविता है।

रामगिरि पर्वत भारत के मध्य में है। यक्ष जानता



है कि वहाँ से वह बादल हिमालय की तलहटी में जाएगा। सो वह उसे अपना दूत बना लेता है। बरसाती बादल का जीवन अमूमन कुछ ही घण्टों का होता है। यह कालिदास के यक्ष को भी पता है। इसीलिए वो बादल से सिर्फ यह नहीं पूछता कि क्या तुम मेरा सन्देश इतनी दूर तक ले जाओगे। वो बादल से यह भी कहता है कि रास्ते में कई बड़ी, खूबसूरत नदियाँ मिलेंगी। उनके पास रुकना, उनसे भाप ले लेना। दक्षिण-पश्चिम से आने वाले बादल ऐसा ही करते हैं। रास्ते में नदियाँ, तालाब भी हैं। बरसाती बादल वहाँ से भाप इकट्ठा करते हैं और उत्तर की ओर जाते हैं।

यक्ष यह भी कहता है कि रास्ते में कृष्णमेघ को वेत्रवती (आज की बेतवा), क्षिप्रा, गम्भीरा, गंगा आदि नदियाँ मिलेंगी। इससे पता चलता है कि डेढ़ हज़ार साल पहले भी ये नदियाँ इसी तरह बहती थीं। यक्ष मेघ से कहता है कि वो विदिशा, उज्जैन और देवगिरि ज़रूर जाए। कालिदास ने उज्जैन शहर का बहुत जीवन्त वर्णन किया है। इसीलिए कुछ जानकार कालिदास को उज्जैन का ही निवासी मानते हैं।

कालिदास जानते थे कि बरसाती बादल कैसे करवट लेते हैं। वे लिखते हैं कि मौसमी हवाएँ धीरे-धीरे पश्चिम की ओर चलेंगी पर फिर उन्हें उत्तर की ओर बढ़ना ही होगा।

जब हम अपने दोस्त को चिट्ठी भेजते हैं तो लिफाफे पर उसका पता लिखते हैं। पर कुछ पते दो-तीन लाइनों में नहीं समा सकते हैं। जैसे, डाकिए के लिए लिखा मेरी सहेली के घर का पता यूँ हो सकता है-

पहाड़ी के उस ओर रिया का घर है। आपको वो सड़क बहुत पसन्द आएगी। रास्ते में मेरी दादी का घर है। वो कुछ खाने के लिए बहुत ज़िद करेंगी। लेकिन वहाँ रुकना मत। एक सड़क पहाड़ी की ओर बढ़ती है। उसके किनारे के पेड़ कामिनी के फूलों से भरे हुए हैं। इन दिनों उनमें से खूब खुशबू आती है। सड़कों पर भी फूल ही फूल छितरे होंगे। आपका झुककर फूल सूँघने का मन होगा लेकिन वहाँ रुकना मत। मेरी दोस्त इन्तज़ार कर रही होगी। फिर एक लाल ईंटों का घर दिखेगा। उसके बाहर एक कुत्ता मस्ता रहा होगा। वही मेरी दोस्त का घर है।

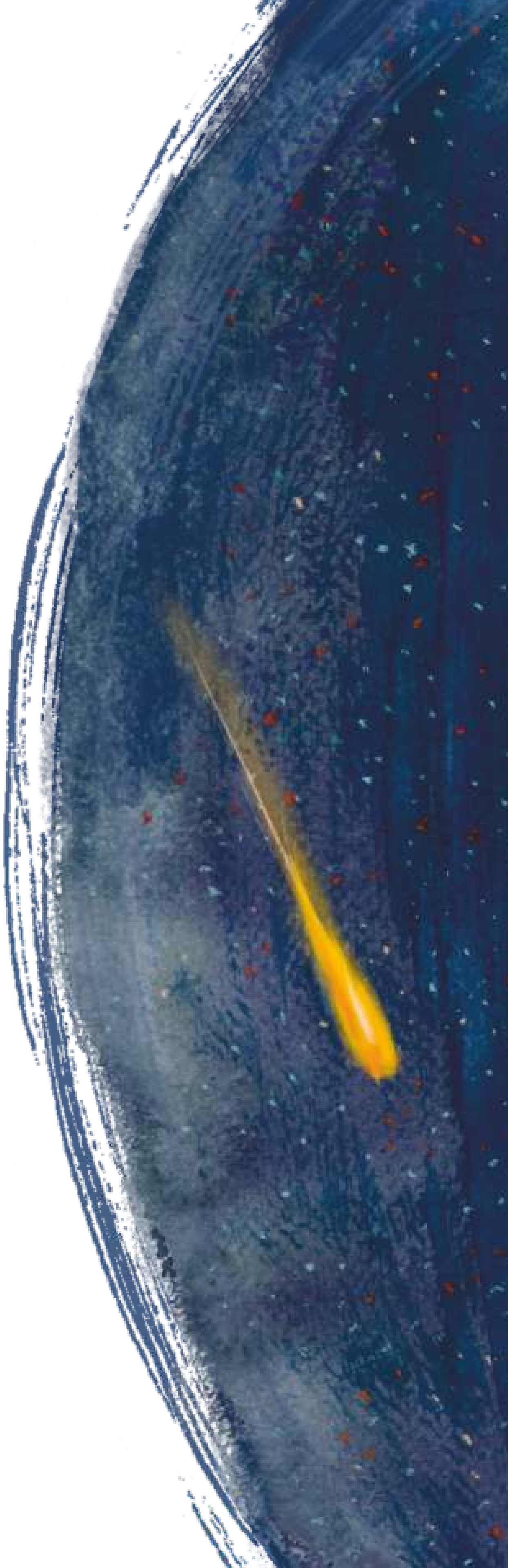
आज हमारे पास उपग्रह हैं। हम अच्छी तरह से जानते हैं कि बादल कैसे बनते हैं। उनका आना-जाना कैसे होता है। और पृथ्वी की पीठ पर कहाँ और कैसे बारिश होती है। भूगोल की किताब में इसे पढ़ना थोड़ा मुश्किल लग सकता है। पर इसे मेघदूत से देखने की कोशिश करते हैं-

अपने सामने एक नक्शा फैला कर उस पर बादलों को घूमने छोड़ दो। किसी पहाड़ी की चोटी पर से गुज़रते बादल पर सवार हो जाओ। तेज़ हवाओं में डोलते बादल से नीचे झाँको। बादल की गरज से लोग कैसे डर रहे हैं? बिजली की चमक में क्या-क्या दिख रहा है? नीचे आते-आते और क्या-क्या नज़र आने लगा है। और हाँ, यदि डिस्चार्ज होने लगो तो नदी पर रीचार्ज करना न भूलना। कैसा रहा सफर!

इसी तरह का एक सफर पुणे के डॉ. एस.वी. भावे ने भी किया। उन्होंने तय किया कि वे मेघदूत में बताए नागपुर से हिमालय तक के हवाई मार्ग पर खुद जाएँगे। वह एक छोटे विमान पर बैठ इस राह से गुज़रे और कालिदास की सटीकता देख हैरान रह गए। इतने साल पहले जब कोई हवाई सुविधा नहीं थी, कैसे कालिदास ने बादल की आँखों से यह सब देख लिया होगा? कमाल है...

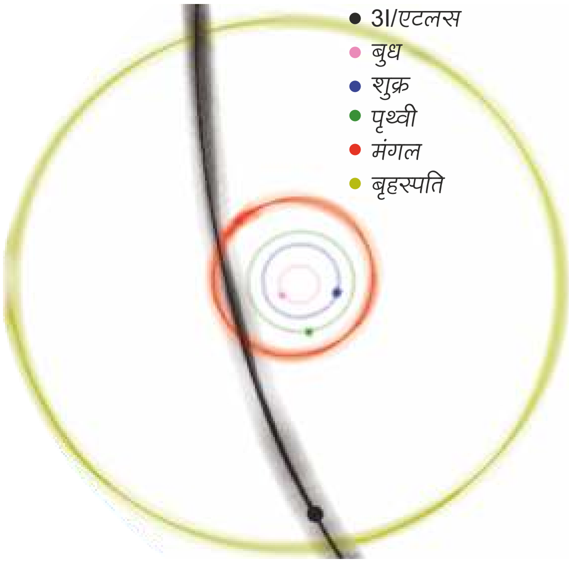
भूले-भटके यात्री

आशिष महाबल
चित्रः तापोशी घोषाल



हमारे सौर मण्डल में सब कुछ ठीक-ठाक चल रहा था। सारे ग्रह विशाल तारे सूरज के चारों ओर चक्कर लगा रहे थे। ग्रह बदस्तूर अपनी-अपनी अण्डाकार कक्षाओं में थे। रेसट्रैक की कारों की तरह। सारी कक्षाएँ एक ही तल भी थीं। इन्हें क्या पता था कि इनके इलाके में कोई बस पहुँचने को है।

1 जुलाई 2025 के दिन अन्तरिक्ष में एक अनजाना पिण्ड दिखा। यह कोई उड़नतश्तरी नहीं था। धूमकेतू था। चिली में एटलस नामक दूरबीन से वैज्ञानिकों ने इसे देखा। इसे नाम मिला 3I/एटलस। 3I इसलिए कि यह तीसरा पिण्ड है जो कहीं और से हमारे तारामण्डल में आया है। वैज्ञानिक चौकन्ने हुए। ZTF नाम की दूसरी दूरबीन से 15 जून को ली तस्वीरें खंगाली गईं। तारामण्डल के तल में इसके प्रवेश की दिशा से साफ है कि यह किसी दूसरे तारामण्डल से आ रहा है। इसकी उम्र हमारे तारामण्डल की उम्र से भी ज़्यादा हो सकती है। दूरबीनों से इस धूमकेतू का एक धुँधला कोमा और एक पूँछ भी दिखाई दे रही है। लगभग 60 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की गति से यह अन्तरिक्ष से गुज़र रहा है। इससे पता चलता है कि प्राकृतिक



पिण्ड आकाशगंगा में अपनी लम्बी यात्राओं में कितनी ऊर्जा और गति प्राप्त कर सकते हैं। एक अन्दाज़ के लिए बता दें कि पृथ्वी सूरज का चक्कर 30 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड की रफ्तार से लगाती है। सबसे तेज़ मानवनिर्मित अन्तरिक्षयान - वॉयजर-1 - जैसे ही हमारे तारामण्डल के बाहर जा रहा है उसकी गति केवल 17 किलोमीटर प्रति सेकेण्ड रह गई है।

पता कैसे चलता है कि कोई पिण्ड किसी दूसरे तारे से आया है?

खगोलविद दूरबीनों से लगातार अन्तरिक्ष पर नज़र रखे रहते हैं। कभी-कभी कोई पिण्ड हमारे तारामण्डल से तेज़ी से गुज़र जाता है। वो ज़्यादा दिन तक नहीं दिखता। वो तो अन्तरिक्ष में अपनी अविश्वसनीय रूप से लम्बी यात्रा पर होता है। इन पिण्डों की गति और दिशा से पता चल जाता है कि वे किसी दूसरे तारे से आए हैं। हमारे ग्रह और धूमकेतू अण्डाकार पथ में सूरज का चक्कर लगाते हैं। ज़्यादातर एक ही तल में। लेकिन दूसरे तारे से आए पिण्ड की गति इतनी तेज़ होती है कि हमारे सूरज का गुरुत्वाकर्षण उन्हें पकड़ नहीं पाता। उनका पथ आमतौर पर हमारे तारामण्डल के तल की तुलना में झुका होता है। वे तेज़ी से सूरज का चक्कर लगाकर गहरे अन्तरिक्ष में कहीं खो जाते हैं। फिर कभी वापस नहीं आते। किसी पिण्ड के पथ की उत्केन्द्रता (उसकी कक्षा की लम्बाई का माप) का एक से ज़्यादा होना इस बात का निश्चित संकेत है कि वह दूसरे तारे से आया है। 3I/एटलस की उत्केन्द्रता लगभग 6.2 है।

3I/एटलस से पहले दो और पिण्ड हमारे तारामण्डल में देखे गए हैं।

1I/ओहमुआमुआ (2017): सिगार-जैसे इस लम्बे-पतले पिण्ड में धूमकेतुओं की तरह धुँधली पूँछ नहीं थी। 100-200 मीटर लम्बा यह एक चट्टानी पिण्ड या बहुत ही असामान्य बर्फ से बना धूमकेतू था।

2I/बोरिसोव (2019): यह बिलकुल धूमकेतू जैसा था। सूरज के करीब पहुँचते ही इसकी बर्फ गैस और धूल में बदल गई। इससे एक बड़ा, धुँधला बादल (कोमा) और एक लम्बी पूँछ बन गई। अध्ययनों से पता चलता है कि अन्य तारामण्डल के धूमकेतू हमारे धूमकेतुओं से काफी मिलते-जुलते हो सकते हैं।

खगोलविदों का मानना है कि भविष्य में भी ऐसे यात्री हमारे तारामण्डल से गुज़रते रहेंगे। अब तक के तीनों पिण्ड प्राकृतिक लगते हैं। क्या पता हमारा अन्तरिक्ष यान विशाल दूरियाँ पार कर किन्हीं और तारामण्डलों से गुज़र जाए। क्या पता...



एक चिट्ठी

मेरे प्यारे दोस्तो,

तुम्हारा स्कूली वर्ष खत्म होने को है। तुम अब सालाना इम्तिहान के इन्तज़ार में होगे। जनवरी-फरवरी के आसपास पढ़ाई का माहौल बढ़ने लगता है। जिन बच्चों ने सालभर पढ़ाई को नज़रअन्दाज़ किया उन्हें अब पाठ्यपुस्तकें याद आने लगती हैं। और रटने-समझने की चीज़ों का पहाड़ कितना ऊँचा है, इसका अहसास होने लगता है।

जब मैं मिडिल स्कूल में था तो दो घटनाओं से मेरी पढ़ाई के तरीके में काफी बदलाव लाए। पहली घटना थी : एक बार महान गायक पंडित नारायण राव व्यास जी एक संगीत गोष्ठी में हिस्सा लेने बनारस आए। व्यास जी पंडित विष्णु दिगम्बर पलुस्कर जी के शिष्य थे। वे उनकी गायकी के जाने-माने कलाकार थे। उम्र में वे मेरे पिताजी से कई साल बड़े थे। बनारस आने पर व्यास जी हमारे घर ठहरा करते थे। उनके चुटकुले, यात्राओं के अनुभव, बड़ों की कहानियाँ मैं और मेरा छोटा भाई चाव से सुनते थे। हमें व्यास जी के आने का बहुत इन्तज़ार था। लेकिन इस दफे व्यास जी ने कुछ नया ही सुर छेड़ा। पहले उन्होंने मुझे और अनन्त को बुलाकर एक छोटा-सा लेक्चर दिया। स्वावलम्बन के महत्व पर।

हमें अपने काम खुद करने की आदत बनानी चाहिए। जहाँ तक हो सके दूसरों से सहायता लेना टालना चाहिए।

व्यास जी की इस लेक्चरबाज़ी की वजह शायद यह थी कि मैं और मेरा भाई अपने हर काम के लिए दूसरों पर निर्भर थे। घर में नौकर-चाकर थे जो बिस्तर बनाना, नहाने के लिए पानी गरम करना आदि करते थे। पढ़ाई भी हम नियमित रूप से नहीं करते थे। चूँकि हम क्लास में अव्वल रहते थे इसलिए पिताजी भी हम पर पढ़ाई का दबाव नहीं डालते थे।

व्यास जी ने उन्हें समझाया - बच्चों को अपना काम खुद करने की और रोज़ चार घण्टे पढ़ने की आदत डालो।

बस, हम दोनों पर अच्छी-खासी नौबत आ गई। सुबह पाँच बजे उठकर पढ़ाई करने का आदेश आया और अपने काम खुद करने का फरमान जारी हुआ। हमें लगा कि हमारे प्रिय मेहमान ने हमारे साथ कैसा विश्वासघात किया। सुबह की मीठी नींद छोड़कर कलम-दवात उठाने को जी नहीं करता था। बिस्तर खुद उठाने का कष्ट अनावश्यक लगता था।

मैं जब पढ़ाई करने परदेश गया तब मुझे इसकी अहमियत का अहसास हुआ। वहाँ सब काम खुद करने होते थे। और अध्यापक ऐसी तेज़ रफ्तार से पढ़ाते थे कि रोज़ नियमित पढ़ाई के बगैर काम ही नहीं चलता था।

पढ़ाई का दूसरा सबक मिला मेरे मोरू मामा से। मोरू मामा हमारे घर रहकर एमएससी गणित की पढ़ाई कर रहे थे। तब मैं आठवीं में था। पिताजी ने हमारे घर की दीवारों पर दो ब्लैक बोर्ड बनवाए थे। उन पर अनन्त और मैं चित्र बनाया करते थे या भूगोल के नक्शे। कभी-कभी पढ़ाई के लेख भी लिखते थे। पर उसका ज़्यादातर उपयोग मज़े के लिए होता था।

लेकिन एक सवेरे जब मैं उठकर बोर्ड के पास गया तो उस पर मामाजी ने लिखा था - A Challenge Problem for JVN यानी जयन्त वी. नार्लीकर के लिए एक चुनौती। सवाल गणित का था। एक कूट प्रश्न, जैसा पाठ्यपुस्तक में नहीं मिलता। मैंने चुनौती का जबाव तो दिया लेकिन काफी मेहनत के बाद। 'अब मैं ऐसे सवाल लिखकर तुम्हें चुनौती देता रहूँगा।' मामा साहब ने ऐलान किया। 'अगर सवाल सुलझा सके तो तुम्हारी जीत! अगर न सुलझे तो हार मानोगे और मैं सुलझा दूँगा।'

अगले दो-तीन सालों में मोरू मामा ने चुनौती से भरे सवालों के ज़रिए मुझे गणित के जो दर्शन कराए वे स्कूल में कभी नहीं मिले। नए अनसुलझे सवाल वैज्ञानिकों को उनका हल ढूँढने की ओर प्रेरित करते हैं। आगे चलकर पता चला कि मूलभूत वैज्ञानिक शोधकार्य प्रकृति की चुनौतियों के जबाव होते हैं। ऐसे शोधकार्य के लिए मोरू मामा के सवाल मेरे लिए एक अच्छी ट्रेनिंग साबित हुए। तो मेरे मित्रों, चुनौतियों का जवाब देना सीखो और वह भी अपने बूते पर!

शुभकामनाओं सहित
जयन्त नार्लीकर

मार्च 2008 की बात है। उन दिनों चकमक का सम्पादन करता था। मन में आया कि जयन्त नार्लीकर जी से चकमक के पाठकों को पत्र लिखने का आग्रह किया जाए। अरविन्द गुप्ता जी की मदद से यह काम आसान हो गया था। यह वही पत्र है ।

सुशील शुक्ल



चित्रः तापोशी घोषाल

आर. एन. आई. नम्बर - DELHIN/2018/76181 द्विमासिक

Price : ₹150.00
ST 0000416

मुद्रक तथा प्रकाशक संजीव कुमार द्वारा
इकतारा ट्रस्ट के लिए मल्टी कलर सर्विसेज़
शेड नं. 92, डी.एस.आई.डी.सी.,
ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज़ 1,
नई दिल्ली 110020 से मुद्रित एवं सी-404, बेसमेंट,
डिफेंस कॉलोनी, नई दिल्ली 110024 से प्रकाशित
सम्पादक - सुशील शुक्ल



आसमान

सिराज अहमद
चित्रः प्रशान्त सोनी

किसी ने स्याही गिरा दी जैसे
आसमां रात का लगे ऐसे
दिखे भोर में हलके सुरमे सरीखा
कही रंग गहरा कहीं रंग फीका

कभी खूबसूरत गुलाबी लगे है
कभी आसमां आसमानी लगे है
कभी बैगनी और कभी गहरा नीला
कभी सन्तरी और कभी सुर्ख पीला